मौसेरे भाई

रचयिता

सुप्रसिद्ध भारतीय हास्य तथा व्यंग्य-लेखक,

सुकवि और समालोचक

कविराजहंस श्रीयुत कान्तानाथ पाण्डेय 'हंस'

एम० ए०, काव्यतीर्थ

अध्यक्ष—संस्कृत तथा हिन्दी-विभाग, हरिश्चन्द्र कालेज, काशी।

प्रकाशक

साहित्य-सेवक-कार्यालय

जालिपादेवी, काशी

प्रथम बार] २००१ विक्रमाब्द [मूल्य २)

समर्पण

जो सिर से पैर तक, केवल हृदय ही हृदय है,
तथा मानवता जिन्हें पाकर निखर उठी है,
अपने उन्हीं आदरणीय बन्धु

श्री भैरवनाथ झा

बी० ई० डी० (एडिनबरा)
(सेक्रेटरी, बोर्ड आफ हाई स्कूल ऐण्ड इण्टरमीजिएट
एजूकेशन, यू० पी०)
के कर-कमलों में
श्रद्धा और स्नेह की यह तुच्छ भेंट।

—कान्तानाथ पाण्डेय "हंस"

मेरी पेंसिल

डिप्टी साहब

पटना के अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करके कल चार दिन बाद घर लौटने पर मुझे यह बात मालूम हुई कि स्वागत-भाषण कई प्रकार के होते हैं ! सम्मेलन में स्वागत-भाषण करते हुए मेरे सम्बन्ध में बड़ी बड़ी बातें कही गई थी। 'आप हिन्दी के अनन्य भक्त, उदात्त साहित्यसेवी, देश के गौरव तथा कविता-कामिनी के शृंगार है आपने अपना अमूल्य समय देकर इस सम्मेलन की जो शोभा बढ़ाई है इसके लिए हम सब आपके चिरकृतज्ञ रहेंगे, आदि आदि। स्वागत-मन्त्री महोदय के इन शब्दों पर मैं मन-ही-मन मुग्ध होता हुआ; ऊपर से विनम्रता और संकोच को प्रतिमा बनकर बैठा था। सोच रहा था कि मेरा समय तो कुछ विशेष अमूल्य नहीं है, कारण दिनभर मित्र-मण्डली में गप्प करने और बच्चों को नहलाने-धुलाने तथा चौखम्भे से शाक-सब्जी खरीद लाने के अतिरिक्त और कोई विशेष काम तो मैं करता नही। हाँ, कभी तीन चार महीने में दो चार कविताएँ लिखकर पत्र-पत्रिकाओं में छपवा देता हूँ ! दो घण्टे कालेज में जाकर बच्चों को पढ़ा आता हूँ जिससे महीने में १५०) रु० मिल जाते हैं। पर इन लोगों ने मेरे समान व्यक्ति को प्रतिष्ठा करके और मेरे समय को बहुमूल्य समझकर अपनी गुणग्राह-कता और सहृदयता ही प्रकट की है ! पर जब घर आया तो

कपड़े भी न उतार पाया था कि शीला की माँ ने अपना मौखिक (सम्मेलन का स्वागत-भाषण मुद्रित था) स्वागतभाषण देते हुए मेरे सम्बन्ध में जो मन्तव्य प्रकट किया उसका सारांश कुछ इस प्रकार का था—'आप ऐसा निखट्टू और वादे का झूठा आदमी तो कहीं देखा ही नहीं। दो दिन में लौटने को कहकर आप आज चार दिन मे आ रहे हैं ! यदि आपको रोज रोज कवि-सम्मेलन में ही जाना अच्छा लगे तो आप मुझे मैके भेजकर तब यह सब खुराफात किया करें ! मेरा भाग फूट गया जो मैं तुम्हारे पाले पड़ी। चार दिन की तनख्वाह कट गई होगी। एक तो महँगी का समय थोड़ी सी पूँजी यों ही खर्च के लिए काफी नहीं होती, इस पर आप सैर-सपाटा करने चले हैं ! किराया भी लौटा दिया ! आखिर इतने लोगों ने किराया लिया। लोग सेकेण्ड क्लास का किराया लेकर थर्ड में यात्रा करते हैं और इस प्रकार कुछ न कुछ बचा ही लेते हैं। पर एक आप हैं कि जेब से भी लगाने को तैयार ! परसों से महँगुवा की माई भी नहीं आ रही है ! अब बर्तन भी मैं ही माँजा करूँ ? तुम्हें मेरे बाप ने मेरा पति बनाया है, न कि सभा और सम्मेलनों का ! घर में तो आप जिस तरह 'पति' के कर्तव्यों का पालन करते हैं उसे ईश्वर ही जानता है; अब बाहर सभाओं के भी पति बनने लगे। आखिर उन सभाओं में स्त्रियाँ भी तो आती होंगी ! फिर किसी को सभापति कहना कितने पाप और लज्जा की बात है ! मर्द तो बेहया हैं ! वे अपना सभापति चाहे जिसे बनाया करें ! पर जिस स्थान पर नारियाँ हों वहाँ तो किसी को सभापति न चुना करें ? धोबिन को कपड़ा ले गये हुए आज दस दिन हो रहे हैं, क्या मैं ही जाकर उससे कपड़े ले आऊँ, कल बिजली भी फ्यूज हो गई ! तुम्हें किसी की क्या चिन्ता ! तुम तो गला फाड़कर कविताएँ पढ़ना जानते हो ! घर में लिहाड़ों, लुच्चों और बेकारों की भीड़ जुटाकर काव्य-चर्चा किया ही करते हो ?

उतने से सन्तोष नहीं होता ? और मेरे लिए जो साड़ी लाने वाले थे वह ले आये ?'

शीला की माँ ने ऐसे ओजस्वी शब्दों में और इतने धारा-प्रवाह रूप में अपना भाषण किया कि मैं सोचने लगा कि मैंने शार्टहैण्ड क्यों न सीखा ? डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी और पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी के बाद आज तीसरी बार मुझे ऐसा सुन्दर धारावाही और सारगर्भित भाषण सुनने को मिला था। यों तो छोटे मोटे इसी ढंग और आशय के भाषण मैं प्रतिदिन ही सुना करता था पर वे सब भाषण इसके सामने प्रेस-प्रतिनिधियों को दिये गये वक्तव्यों के समान थे।

अच्छा तो तुमने सौदामिनी के यहाँ से मजदूरनी को क्यों नहीं बुलवा लिया। उसी की मजदूरनी ने बर्तन माँज दिये होते ? तुम्हें यह सब करने की क्या आवश्यकता थी। स्वयं तो इतने छोटे से काम के लिए पड़ोस से किसी को बुलवा लेना तुमसे होता ही नहीं, मुझपर बिगड़ना जानती हो। केवल बकना और लेक्चर झाड़ना जानती हो। ऐसा ही है तो ए. आर. पी. के लिए कई महिला व्याख्यानदात्रियों के लिए विज्ञापन निकला है। जाओगी, है स्वीकार ? मैंने भी कुछ खीझ प्रकट करते हुए कहा।

व्याख्यान देने और विज्ञापन करने जाओ तुम। मैं क्यों जाने लगी ! यहाँ घर का ही काम किस ए. आर. पी. से कम है ! सौदामिनी के यहाँ से मजदूरिन बुलवाती क्यों नहीं ! क्या बर्तन माँजने के लिए मेरे हाथ खुजला रहे थे ! यहाँ तो वही कहावत है कि आपत्ति अकेली नहीं आती ! परसों लाला जी के खाली मकान को किसी डिप्टी कलेक्टर साहब ने किराये पर ले लिया न। कहीं से बदली होने पर यहीं तो आये हैं। सो उन्हें भी एक मजदूरिन की जरूरत पड़ गई। सौदामिनी के पतिदेव और उनका घर भर उन्हीं की खुशामद में लगा हुआ है। एक डिप्टी

कलेक्टर के सामने किसी प्रोफेसर को कौन समझता है। यों भले ही सौदामिनी दिन में दस बार यहाँ पधारती थी, अब तो दो दिन से बुलवाने पर भी उनके मिजाज ही नहीं मिलते। डिप्टी साहब की बहू ही इस समय सब कुछ हैं। ऐसी स्वार्थमयी स्त्री कहीं नहीं देखी।

'डिप्टी साहब' शब्द सुनते ही मेरे कल्पना-नेत्रों के सामने अभी दो तीन दिन पूर्व की एक अद्भुत और रोचक घटना का दृश्य आ गया और मैं उसका स्मरण कर अट्टहास कर उठा। शीला की माँ मेरी इस अप्रत्याशित और भीषण हँसी से कुछ घबड़ा उठी। वे सोच रही होंगी कि मैं उनकी इस असुविधा के प्रति कुछ सहानूभूति प्रकट करूँगा, सौदामिनी की निन्दा जिस प्रकार उन्होंने की थी, उसी प्रकार मैं भी सौदामिनी के पति को स्वार्थी और नीच बतलाऊँगा या कम-से-कम उनकी इस बात का समर्थन ही करूँगा, पर यहाँ तो मैं अट्टहास कर रहा था। मेरा कार्य उनकी दृष्टि में घोर दुःसाहस और असहृदयतासूचक प्रमाणित हुआ और वे कुछ रुआसी-सी होकर बोली—हँस लो, दूसरों के कष्ट पर, किन्तु यह अच्छी बात नहीं है। इसी से तो मैं अपने भाग्य को कोसती ही हूँ। मर्द ऐसे ही नीरस होते हैं। 'मर्द नीरस होते हैं या सरस इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने को तो मैं इस समय तैयार नहीं हूँ, हाँ यह बात अवश्य है कि मैं इस समय तुम्हारा अपमान करने या चिढ़ाने के लिए नहीं हँस रहा था। तुम तो दिनों-दिन शक्की होती जा रही हो। मुझे तो अभी एक परसों नरसों की ही मजेदार घटना का स्मरण हो आया था। जिसे सुनकर तुम भी शायद हँसोगी ही, कम-से-कम रोओगी तो नही ही।

जी हाँ, यह सब आप मुझे बहलाने के लिए कह रहे हैं। अच्छा बताओ न वह कौन-सी घटना थी! जरा मैं भी तो सुनूँ ?

शीला की माँ का सारा रोष कहीं दूर चला गया और उसका स्थान उत्सुकता ने ले लिया। नवीन बातों को जानने की इच्छा या उत्सुकता नारी-जाति का एक विशेष लक्षण है। शीला की माँ भी इसका अपवाद नहीं है। ज्यों-ज्यों उनकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी मैं टालमटोल करता जाता था! जब देखा कि ये बिना सुने नही मानेंगी तो मैंने फिर उन्हें सुना ही देना उचित समझा। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि मैंने उस घटना को सुनाने के पूर्व उनसे शुल्कस्वरूप दो प्याली चाय भी बनवा ली। नही तो केवल बासी दालमोट ही पर सन्तोष करना पड़ता।

× × ×

'हाँ, तो मुझे वह घटना भूल ही गई होती, यदि तुमने डिप्टी साहब का नाम न लिया होता' मैंने चाय पीकर दालमोट चबाते हुए कहा। बात यह है कि इस मुहल्ले में डिप्टीसाहेब की बड़ी प्रतिष्ठा की बात मैंने तुमसे सुनी! कह नही सकता कि उनकी यह प्रतिष्ठा उनके पद-गौरव के कारण है या उनके स्वभाव के कारण। जब उनसे मिलूँ तो ठीक कारण समझ में आवे। मान लिया बाबू-घनश्यामदास (सौदामिनी के पति) को उनके स्वभाव ने ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया हो, क्योंकि वे तो किसी का रोब सहन करनेवाले व्यक्ति नहीं, पर मुहल्ले की साधारण जनता तो रोब के कारण ही डिप्टीसाहब को मानती होगी। और सौदामिनी को डिप्टियाइन साहिबा का स्वभाव पसन्द आया होगा तभी तो उसने अपनी मजदूरिन को उनके यहाँ भेज दिया और तुम्हारे बुलवाने पर भी दो दिन से तुम्हारे यहाँ नही आयी, किन्तु... ...'

'अजी चूल्हे में जावे डिप्टी साहब, तुम तो वह घटना सुनाते नहीं, लग गये मानव-स्वभाव की मीमांसा करने। पहले वह घटना तो सुनाओ।'

'हाँ, वही तो मैं कहने जा रहा था, पर तुमने उतावली से मेरा वाक्य भी समाप्त न होने दिया। लो यह चाय तो ठंढी हो हो गई, जरा इसमें और देना तो।'

शीला की माँ को मैंने जो किस्सा या सच्ची घटना सुनाई थी, उसे आप भी सुन सकते हैं, कारण आप भो तो अपने ही हैं। यद्यपि शीला की माँ से तो इस घटना के नाम पर दो प्याली चाय भी मिल गयी थी, पर आपसे वह भी आशा नहीं।

× × ×

पटना-कविसम्मेलन का सभापतित्व करने के लिए मैं जब चला तो मन में सर्वप्रथम यह विचार उठा कि इंटर क्लास मे चढ़ूँ या थर्ड में! यों तो मैं थर्ड क्लास में हो यात्रा किया करता हूँ, पैसे की क़िफायत के विचार से नहीं, वरन् अपनी कहानियों के लिए मसाला एकत्र करने के विचार से! बात यह है कि इंटर क्लास में तो जो यात्री होते हैं वे प्रायः अपने ही वर्ग के रहते हैं। पर थर्ड क्लास में देश की साधारण जनता, किसानों मुहर्रिरों, देहाती अपढ़ मनुष्यों तथा अनेक प्रकार की वेषभूषा, चरित्र और स्वभाववाले प्राणियों से भेंट होती है। तानसेन की गोली और आश्चर्य मलहम बेचनेवालों से लेकर, गोशाला, अनाथालय, विधवाश्रम और बाढ़पीड़ितों के नामपर चन्दा माँगनेवालों तक के अपूर्व दर्शन होते हैं। तरह-तरह की विचित्रताओं का अनुभव होता है! एक साथ, एक ही डिब्बे में घुसनेवाले भेड़ों की एकता को भी तिरस्कृत करके अपनी एकता को सर्वोपरि सिद्ध करनेवाले व्यक्ति भी आपको थर्ड क्लास में ही मिलेंगे और वीर-गाथाकाल के अवशिष्ट चिह्नस्वरूप भी प्राणी आपको वहीं मिलेंगे जो आपको अपने वीरत्व-प्रदर्शन द्वारा कायर से एकदम योद्धा में परिणत करेंगे। सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव! सिद्धान्त के अटल पुजारी भो थर्ड क्लास

के बेचों की शोभा बढ़ाते हुए, टाँगें पसारकर लेटे हुए यहीं दृष्टि-गोचर होंगे और उनके सिद्धान्तपालन-स्वरूप योगासन के कुछ विशेष भेद या प्रकार भी, यदि आप सीखना चाहें तो यहीं सीख सकते हैं। परन्तु इस बार पता नहीं कि क्या बात थी, शायद अपने सभापति-पद का ख्याल आ गया था, या इधर बीमारी से उठने पर शरीर के दुर्बल हो जाने से कुछ योगासनों से अरुचि होने के कारण मैंने इंटर क्लास में ही यात्रा करना उचित समझा।

मुगलसराय तक तो डब्बे में मैं ही अकेला था। पर यहाँ आने पर एक मुसलमान सज्जन ने भी डब्बे में प्रवेश किया। ये शायद कहीं के ताल्लुकेदार थे। (नाम-गाँव तो उन्होंने मुझे बताया था, पर मैंने उसे स्मरण रखकर अपने ज्ञानकोष को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं समझी।) ये आकर सामने की खिड़की के पास दूसरी बेंच पर बैठ गये, फिर थोड़ी देर में शेर-वानी के बटन खोलकर, पूरी बेंच पर टाँग फैलाकर लेट गये और उर्दू का कोई अखबार पढ़ने लगे। गाड़ी लगभग पचीस मिनट तक खड़ी रहने के पश्चात् अब चलने को हुई। मन में बड़ी आशा हुई कि चलो एक से दो हुए। बातचीत में रास्ता कट जायगा और मन में आया तो कुछ देर के लिए सो भी लेंगे। कारण खाँ साहब को कलकत्ता तक जाना था, लम्बी सफर थी और पटना भी कुछ समीप नहीं था। पर गाड़ी के सीटी देते-देते ही लगभग ७,७ विद्यार्थियों ने जो बाद में मालूम हुआ कि काशी-विश्वविद्यालय की विभिन्न कक्षाओं (शायद थर्ड और फिफ्थ इयर) के छात्र थे, हमारे इंटर क्लास कम्पार्टमेंट में प्रवेश किया। इनके साथ सामान भी काफी था। इन लोगों ने सामान भी बेंच पर ही स्थापित किया। पाँच छात्रों को तो आराम से बैठने की जगह मिल गई। दो तीन रह गये। अब इन लोगों ने खाँ साहब की ओर दृष्टिपात किया। खाँ साहब

रौब से टाँगें फैलाए अपने बिस्तर पर लेटे हुए अखबार पढ़ रहे थे। लड़कों में से एक ने कहा जनाब जरा टाँगे सिकोड़ लीजिए तो बैठने की जगह हो जाय।

खाँ साहब बड़े जीवट के व्यक्ति निकले। बोले—वाह साहब किराया दिया है कि ठट्ठा है। कलकत्ते तक जाना है कलकत्ते तक। अभी आराम न कर लूँगा तो पटना के बाद सोने को कौन कहे, बैठने को भी जगह न मिलेगी। आपलोग सामान फर्श पर क्यों नही रख देते। या उधर उस बेच पर क्यों नही चले जाते जिसपर पण्डित जी है।

पर छात्रों ने पता नहीं किस कारण मुझे छेड़ना उचित नहीं समझा? वे उन्हीं से निपटने की सोचने लगे। सबके सब एक पंक्ति में खड़े होकर लगे झुक-झुककर फर्शी सलाम करने और ग़ालिब शेखसादी की कविताएँ पढ़ने। खाँ साहब भीतर से तो बहुत घबड़ाए, पर ऊपर से मुस्कराते रहे। अगला स्टेशन आया और वे एक कुली बुलाने गये। लड़कों ने समझा कि स्टेशन मास्टर या गार्ड से शिकायत करने गये हैं। पर उन्होंने आकर कुली से सामान उठवाया और दूसरे डब्बे में जा विराजे।

मैं यह सब देखकर मन-ही-मन हँस रहा था। 'बरे बालक एक सुभाऊ' कहावत याद आ गई। लड़कों ने बेञ्चों पर बैठकर ताश खेलना प्रारम्भ किया। पर इतने में ही एक और सज्जनने जो 'सूटेड-बूटेड' थे, उस डब्बे में प्रवेश करना चाहा। लड़कों ने रोकने का प्रयत्न किया। वे बोले—अजी, क्या वाहियात बात बकते हो। जानते नहीं, मैं डिप्टी कलेक्टर हूँ।

लड़कों ने कहा—भाई साहब, यह इजलास नहीं है, और न हमीं लोग मुजरिम हैं। हम लोगों ने भी टिकट खरीदा है और जितने लोगों के लिए डब्बे में सीट है, उससे अधिक व्यक्ति इसकी शोभा पहले से ही बढ़ा रहे हैं।

गाड़ी ने सीटी दे दी थी। अत: डिप्टी साहब के रोब में एकबारगी कमी आ गई। बडी नम्रता से बोले—आप लोग तो व्यर्थ ही रुष्ट हो रहे हैं। सेकेंड क्लास एकदम भरा हुआ है। वही अवस्था फर्स्ट क्लास की भी है। अन्यथा मै आपलोगों को तकलीफ न देता। मुझे यह ट्रेन 'मिस' करने से बड़ी कठिनाइयाँ होंगी। आपलोग शिक्षित होकर जब ऐसा करेंगे तो अशिक्षितों के बारे में कहना ही क्या। मैं साहब खड़ा ही रहूँगा। आपलोगों की सीट से मुझसे कोई मतलब नहीं।

लड़के कुछ पसीजे और डिप्टी साहब ने भीतर प्रवेश किया। पर लड़कों ने यह उचित नही समझा कि उन्हें बैठने को स्थान दे। मैं भी विवश था क्योंकि उनमें से तीन चार ने आकर मेरे बगल में भी आसन जमा लिया। फलत: बेचारे डिप्टी साहब को खड़ा ही रहना पड़ा।

यहाँ तक तो कोई बात न थी। पर आगे लड़कों ने और भी उपद्रव प्रारम्भ किया। जब किसी स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होती और कुछ लोग डब्बे में घुसने का उद्योग करते तो लड़के एक साथ चिल्ला उठते—अजी अन्धे हो क्या! देखते नहीं कि डब्बे में जगह नहीं है। डिप्टीसाहब पाखाने के पास खड़े हैं।

फिर तो हर एक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होते ही यही कार्यक्रम चालू किया जाता था। डब्बे में कोई न भी आना चाहता था तो उन लड़कों में से एक या दो जाकर कुछ यात्रियों को अपने डब्बे में स्थान बताकर भेजता और बाकी लड़के लगते चिल्लाने—अजी अन्धे हो क्या! देखते नही कि डिप्टीसाहब पाखाने के पास खड़े हैं। तुम्हारे ऐसे लोगों को यहाँ कहाँ शरण?

डिप्टीसाहब रह-रहकर लड़कोंको क्रोधसे घूरते, पर कुछ कहने पर और भी उपद्रव होगा, यह सोचकर मन मसोसकर रह जाते। खैर उनका स्टेशन आया, और वे जब उतर गये, तब

कहीं उनकी जान बची। एक बार मैंने स्वयं उठकर उन्हें अपनी जगह देनी चाही थी, पर शायद उन्होंने भी उसे कोई षड़यन्त्र समझा या क्या बात थी कि मेरे अनुरोध को स्वीकार न किया।'

'हाँ, हाँ, तुम्हीं तो ऐसे सीधे-सादे अनुरोध करनेवाले व्यक्ति हो। अध्यापक होते हुए भी छात्रों को डाँटकर मना न कर सके।' शीला की माँ ने डिप्टी साहब से सहानुभूति दिखलाते हुए कहा।

अजी, अपने छात्र अपनी बात मान लेते हैं, यही सौभाग्य की बात है। दूसरे और अपरिचित छातों पर रोब गाँठना या उन्हें उपदेश देना खतरेसे खाली नही है। इस स्वतन्त्रता के युग में, स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता या स्वेच्छाचारिता का जैसा दौर-दौरा है, उसे तुम क्या जानो। जिन लोगों ने छात्रों को इस स्वच्छन्दता का उपदेश दिया है, वे ही अब रोते फिरते हैं। शिक्षा मन्त्री सरीखे नेता भी छात्रों की सभा में पिटते-पिटते बच जाते हैं।

× × ×

एक सप्ताह बाद अपने मकान से निकलते हुए ही मुझे अपने मुहल्ले में वह व्यक्ति मिले जो नये-नये किरायेदार होकर आये थे। ये वही ट्रेनवाले डिप्टीसाहब थे। मैंने उन्हें पहिचान लिया, और उन्होंने मुझे। किंतु यद्यपि हम दोनों में अब काफी घनिष्टता है, पर उस घटना की चर्चा कभी नहीं होती।

घिर्राऊलाल के फूफा

घर से बाहर दाहिना पैर निकालते ही घिर्राऊलाल के फूफा मुंशी चिरौंजीलाल को गाँव के नवयुवक तेली काने साव ने पाला-गन किया और पूछा—चचा, आज इतने तड़के कहाँ चले? मुंशीजी को तो मानो काठ मार गया। बिगड़कर बोले—तुम्हे इसी

समय आकर यह प्रश्न करना था ! आदमी को चाहिए कि जब किसीको कहीं जाता देखे तो व्यर्थ में उससे खोद-विनोद न करे !' यह कहकर मन-ही-मन बड़बड़ाते हुए निकले कि कहाँ के साइत से निकले, कि एक तो काना ऊपर से तेली आदमी घर से बाहर पैर निकालते ही दृष्टिगोचर हुआ, वे आगे बढ़े ।

मुशीजी, बात यह थी कि ससुराल जा रहे थे ! अपने साले की लड़की के विवाह में भाग लेने के लिए। लड़की के विवाह के साथ ही लड़के का जनेऊ भी था। मुंशीजी की घरवाली एक सप्ताह पूर्व ही अपने मैके पहुँच चुकी थीं। मुंशीजी कुछ लेन-देन, हिसाब-किताब के कारण उस समय न जा सके थे। यद्यपि अभी विवाह में तीन-चार दिन की देर थी फिर भी मुंशीजी के ससुराल का मामला होने के नाते शीघ्रता करनी पड़ी। विचार तो आज सन्ध्या को ठण्डे-ठण्डे प्रस्थान करने को था पर उस समय भद्रा थी, इसलिए दिन में तड़के ही निकल पडे। १५ कोस जमीन तै करनी थी। गर्मी के दिन थे। कुछ खिलवाड़ थोड़े ही था ! भद्रा के भय से दोपहर की धूप सह लेने को तैयार हुए। पर काने साव तेली के दर्शन से उन्हें यह तो निश्चय हो ही गया कि बिदाई में एक जोड़ी बैल मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है।

लगभग २,२॥ मील तक चले जाने के बाद मुंशीजी को यह स्मरण हुआ कि वे टीका मे देने के लिए अपने जेब में रुपयों का बटुवा (थैली) रखना भूल गये। उसे वे रसोईघर के डौंड़ पर ही छोड़ आये है। यदि किसी ने देख लिया होगा तब तो वह क्यों मिलने लगा। १५) रु० तो गये ही समझो ! देखा न ! काने साव तेली के द्वार पर उन्हें जो आशंका हुई थी, वह इस प्रकार सत्य प्रमाणित हुई !

मुंशीजी को पुनः घर लौटना पड़ा। बिना टीके का रुपया

लिए ससुराल जा भी कैसे सकते थे। चार आदमियों के बीच में टीका न काढ़ने पर उनकी प्रतिष्ठा कैसे रहेगी। वहाँ वे किसी से उधार भी माँगना ठीक नहीं समझते। वाह रे काने तेली। तू न मिलता तो यह सब काहे को होता।

मुशीजी ऐसे कलपते घर लौटे। बारे रुपये का बटुआ उन्हें यथास्थान मिल गया। उन्होंने निश्चिन्तता की साँस ली। अब तुरन्त ही फिर प्रस्थान करना उन्हें कुछ कठिन मालूम होने लगा। सोचा रात में भद्रा तो अवश्य है. पर क्या किया जाय। एक बार दिन में तो वे यात्रा प्रारम्भ कर ही चुके हैं। लोग दिशाशूल के भय से एक दिन पूर्व ही 'प्रस्थान करा देते हैं, (या प्रस्थान भेज देते हैं।) कल दिशाशूल में जाना आवश्यक है तो आज कोई वस्त्र, चावल और सुपारी पहले से ही किसी पड़ोसी के यहाँ भेज दिया या स्वयं ही उस पड़ोसी के यहाँ जाकर सो रहे। चलो दिशाशूल का खटका मिट गया। यहाँ तो मुंशीजी स्वयं दो मील तक अच्छे मूहूर्त में जा चुके थे। अब यदि रात में भद्रा में ही यात्रा करें, तो इसमें कौन-सा दोष है। लेकिन फिर सोचते थे कि कहीं कोई अनिष्ट हुआ! बिदाई अच्छी न मिली तो जाना भी व्यर्थ ही होगा।

इसी प्रकार द्विविधा मे बहुत देर तक पड़े रहने के पश्चात् मुंशीजी ने चल देने का निश्चय किया। पर यह भी निश्चय किया कि रात में खलिहान के पासवाली बाबा भूसेदास बैरागी की मड़ैया मे विश्राम करके तीन बजे उठकर वहाँ से ससुराल के लिए प्रस्थान करेंगे। कष्णपक्ष की रात्रि के अन्धकार में अकेले यात्रा करने में खतरा था। पास में रुपये थे। कोई मारकर छीन ले तो क्या करेंगे। बाबाजी की मड़ैया में आजकल कोई रहता भी नहीं। खाली है। किसी को कोई कष्ट भी न होगा! अन्त में यही निश्चय करके उन्होंने अपने भतीजे मुंशी निकम्मालाल को

इसकी सूचना दी और कुछ आवश्यक बातें सरेखकर वे ८ बजे रात में घर से निकल पड़े, उसी मड़ैया के लिए।

संयोग की बात ! उसी दिन सन्ध्या को चार बजे बाबा मूसें-दास का एक चेला कनकटाचन्द कई स्थानों का चक्कर लगाता गुरुदर्शन की इच्छा से मड़ैया पर आया। गुरुजी के न रहने से उसने बाहर चबूतरे पर ही दाल-बाटी बनाई और खा-पीकर लेटा ही था कि मुंशीजी वहाँ पहुँचे।

कनकटाचन्द को मड़ैया पर आये चार-पाँच घंटे बीत चुके थे, पर उसे अब तक किसी मनुष्य के दर्शन न हुए थे। बात यह थी कि वह मड़ैया आम रास्ते से कुछ हटकर थी और आज-कल यों भी लोग लगन की तेजी से अपने-अपने कामों में फँसे हुए थे। नहीं तो नित्य सन्ध्या समय बाबाजी की मड़ैया ही गाँव-वालों के मिलने-जुलने का अड्डा बनी रहती थी। गाँजे का दम लगाना और सत्संग करना वहाँ का नियमित कार्यक्रम रहा करता था। पर इधर कुछ समय से बाबाजी के तीर्थाटन करने चले जाने के कारण तथा चेलों के भी न रहने से कुटिया एकदम शान्त, निर्जन बियाबान-सी हो रही थी।

कनकटाचन्द ने मुंशीजी को आते देखा पर अन्धकार के कारण उन्होंने पहचाना नहीं, पर अब स्वयं मुंशीजी ने कहा—कौन गुरु महाराजी आय गयौ का। दण्डवत् महाराज !' तो कनकटाचन्द ने इनकी आवाज पहिचानी और आशीर्वाद देकर गाँववालों का कुशल-समाचार पूछा। मुंशीजी को हुक्का पीने को तो मिला। फिर दोनों कुछ रात बीतने पर सोये।

मुंशीजी तीन बजने के कुछ पूर्व ही उठकर चल दिये। इधर कनकटाचन्द ने रात में उठकर एक बार फिर गाँजे का दम लगाया सवेरे ६ बजे तक उठने का विचार कर शय्या पर जा पड़े। पर कनकटाचन्दजी को ६ बजे सोकर उठने की आवश्यकता

ही नहीं हुई। कारण उन्होंने जो दियासलाई जलाकर फेंक दी थी। उसने एक सूखी घास पर पड़कर धीरे-धीरे अपना कार्य प्रारम्भ किया। और शीघ्र ही कुटिया पर दावानल का उग्रनृत्य प्रारम्भ हुआ। पर कनकटाचन्दजी ऐसी गाढ़ निद्रा में निमग्न थे कि सीधे स्वर्ग ही पहुँच गये। उनकी दाहक्रिया के लिए किसी की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

सवेरा होते ही सारे गाँव में यह बात बिजली की भाँति फैल गई कि मुंशी घिराऊलाल के फूफा अर्थात् मुंशी चिरौंजीलाल बाबा मूसेदास की मड़ैया में जल मरे। लोग उनके दरवाजे पर जाकर शोक—समवेदना—प्रकट करने लगे—बेचारे बड़े ही नेक आदमी थे। कलतक तो लोगों से उनकी बातचीत हुई थी! देखो न, किस कुसाइत में बेचारे ससुराल चले जो यह आफत आई। मड़ैया में आकर सोने की क्या आवश्यकता थी। घर ही पर सोये रहते। पूरे तीन बजे के बदले पाँच ही बजे रवाना होते तो क्या हो जाता। विवाह लड़की का था। लड़के का नहीं। बारात तो उन्हीं के ससुराल ही आनेवाली थी। द्वारपूजा पर न पहुँचकर खिचड़ी-भात के समय भी पहुँचते तो क्या हानि थी?

लोगों को जब यह मालूम हुआ कि विवाह तो तीन दिन बाद होनेवाला था, तब तो वे लोग मुन्शीजी को और भी बेवकूफ बनाने लगे। 'बाल सफेद हो गये भइया पर मालूम होता है कि धूप में ही सफेद हुए थे। यह लड़कपन किस काम का?

लोग उन्हें और भी बुरा-भला कहते पर तब तक एक सहृदय व्यक्ति बोला—जाने दीजिए! अब तो वे जल ही मरे। जो होना था सो तो हो ही गया। अब उनके आत्मा को कोस कोसकर कष्ट न दीजिए!

मुंशीजी के भतीजे ने जाकर जली हुई कुटिया में से हड्डियाँ ले आकर नदी में विसर्जित कर दीं। और पुरोहित जी को बुल-

चाकर उनके क्रिया-कर्म के सम्बन्ध में चर्चा करने लगा ! उनके ससुराल भी खबर भेजने के लिए तुरन्त आदमी दौड़ाया गया ! आदमी और कोई नहीं खास मुंशीजी का ही हरवाहा फेकुवा चमार था। पर ऐसी बातें बिना किसी के द्वारा समाचार भेजे भी स्वयं फैल जाती हैं। अतः एक आदमी जो साइकिल से मुंशीजी के ससुराल के गाँव की ही ओर से जा रहा था, उसने मुंशीजी के ससुराल के एक आदमी से यह बात कह दी ! जिसका फल यह हुआ कि मुंशीजी के ससुराल पहुँचने के ठीक डेढ़ घण्टा पूर्व ही उनकी मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँच चुका था !

मुंशीजी जब ससुराल पहुँचे तो वहाँ घर में से रोने-पीटने का शब्द सुनाई पड़ा। वे बड़े चकराये और सोचा कि कोई गमी हो गई ! और रोने-धोने के ढंग से उन्हें यह भी विदित हो गया कि मुर्दा अभी घर में ही है। अब उन्हें विश्वास हो गया कि विदाई में बैल मिलने से रहे ! जनेऊ ब्याह सभी स्थगित हो गये मकान से थोड़ी ही दूरी पर रह गये होंगे कि उन्हें एक व्यक्ति दिखाई पड़ा जिससे उन्हें पता चला कि लालाजी के बहनोई मर गये। मुंशीजी ने सोचा कि उनके ससुर के बहनोई दिवंगत हो गये। थे भी बुड्ढे ! जनेऊ में आये रहे होंगे ! लू लग गई होगी। या अधिक भोजन कर लिया होगा।

मुंशी चिरौंजीलाल ने सोचा घाट तक जाना ही होगा। कपड़े-लत्ते कहीं उतार कर रख दें तो ससुराल जावें, नहीं तो सूतकवालों को छूकर उनके कपड़े भी अशुद्ध हो जावेंगे ! इसलिए उन्होंने पास ही के एक पेड़ पर चढ़कर उसकी सबसे ऊँची डाली में बाँधने का निश्चय किया। उन्होंने गमछा पहन लिया और सब कपड़े-लत्ते एक दुपट्टे में बाँध कर पेड़ में टाँग दिया। यह सब वे कर ही रहे थे कि उन्हें अपना हरवाहा फेकुवा चमार उधर से लाला जी के मकान की ओर दौड़ता जाता दिखाई पड़ा ! वह यहाँ कैसे

आया, यही पूछने के लिए उन्होंने उसे आवाज दी पर वह बे-तहाशा दौड़ता हुआ जा रहा था और ये पेड़ के ऊपर थे, इस-लिए उसने इनकी बात नहीं सुनी !

घर में यद्यपि रोना-पीटना चालू था, फिर भी मुंशीजी के बूढ़े ससुर जो अनुभवी व्यक्ति थे। अभी विशेष रो-गा नहीं रहे थे ! खबर शायद झूठी हो। किसी दुश्मन ने उन्हें छकाने के लिए और उनके यहाँ जनेऊ-विवाह में विघ्न डालने के लिए यह संवाद पहुँचवा दिया हो ! पहिले मुंशीजी के गाँव पर खबर भेज कर जाँच तो कर लें। और आज तो मुंशीजी खुद ही आने वाले थे, कौन जाने आते ही हों ! यही सोचकर वे कुछ धैर्य धारण किये हुए थे और अपनी व्यथा आदि को भी धीरज बंधा रहे थे, पर जब खास फेकुवा ने आकर रो-रोकर सब हाल सुनाया तो लाला जी भी फुक्का फारकर रोने लगे और घर में तथा बाहर भी इतना कोहराम मच गया। पर इतने में ही गमछा पहिने नगे बदन मुंशी चिरौंजी लाल यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। उन्हें देखना था कि सब लोग भूत ! भूत कहकर भाग खड़े हुए !

मुंशी चिरौंजी लाल जिधर फेकुवा भागा था। उधर ही लपके और उसे पकड़ लिया ! अरे बाप रे कहकर फेंकुवा तो तुरन्त ही बेहोश हो गया ! तब लाचार होकर मुंशीजी घर के अन्दर चले ! लोगों ने दरवाजे धड़ाधड़ बन्द कर लिए ! गाँव भर में यह बात फल गयी कि मुंशी चिरौंजी लाल मरकर भूत हो गये हैं ?

पर स्वयं मुंशी चिरौंजीलाल को अब तक कुछ नहीं समझ पड़ा था। अतः वे जोर जोर से दरवाजा पीटकर उसे खोलने के लिए कहने लगे। भीतर का रोना पीटना बन्द हो चुका था। करुणा का स्थान भय ने ले लिया था। लोग डर रहे थे कि कहीं दरवाज़ा टूट न जावे। औरते हाथ में जलती हुई लुआठियाँ ले लेकर खड़ी थी। लालाजी जोर-जोर से हनुमान-चालीसा का पाठ कर रहे थे।

पुराना दरवाजा, धूप और पानी के कारण सड़ा हुआ ! कहाँ तक टिकता ! मुंशीजी के दस-बारह धक्कों के बाद उसने मुँह बा दिया। पर मुंशीजी के ऊपर दरवाजा खुलते ही स्त्रियाँ टूट पड़ीं और उनके मुँह पर दे लुआठी दे लुआठी खूब ही इनका मुख-दाह किया। बेचारे बाप-बाप करते भाग चले !

जब लालाजी तथा अन्य पुरुषों ने देखा कि भूत कमजोर है, औरतों की मार पर ही भाग खड़ा हुआ, तो उनमें भी साहस का संचार हुआ और वे भी लुआठियाँ लेकर दौड़े। भूत को गाँव के बाहर खदेड़ देना ही उचित था। आगे-आगे मुंशो चिरौंजी-लाल भागे जा रहे थे और पीछे-पीछे उनके ससुर तथा उनके अड़ोसी-पड़ोसी 'भूत-पिशाच निकट नहिं आवैं, हनूमान जब नाम सुनावै' को चिल्ला चिल्लाकर पढ़ते हुए उन्हें लखेदे जा रहे थे।

जब मुंशी चिरौंजीलाल गाँव की सीमा के बाहर लखेदे जा चुके और सब लोग सकुशल गाँव में अपने-अपने दरवाजों पर लौट आये, तो सबके जी में जी आया। लोग सोचने लगे—आज परमात्मा ने बड़ी कृपा की कि भूत के द्वारा कुछ हानि नहीं पहुँची। नहीं तो भूत भला कहीं ऐसे वेसे भागता है !

एक बूढ़े ने कहा—भइया, अभी दो ही एक दिन का भूत है न। जरा दो-तीन महीने बीतने तो दो। तब यही मुंशी चिरौंजी-लाल गाँववालों का घर से बाहर निकलना मुश्किल कर देंगे। फिर उन्हें आप लोगों ने आज परेशान तो काफो किया है। मैं तो समझता हूँ कि बदला जरूर लेंगे। हाँ, आप लोगों से इतना कहे देता हूँ कि सोते समय अपने कमरों में लोहबान सुलगा लिया करें, और पास मे लोहे की एक कील अवश्य रखा करें ! बहुत मुमकिन है आप लोग इस उपाय से बच भो जावें !

दो ही दिन बाद बारात आनेवाली थी, पर वहाँ कहला दिया कि दूसरा मुहूर्त निश्चित करें ! घर में तैयार हुई तमाम सिठा-

इयाँ महापात्र के हाथ लगीं ! कुछ अछूतों का भी भाग्योदय हुआ !

मुंशी जी गाँव के बाहर जब नंगे बदन, हाँफते हुए पहुँचे तो उस समय उनकी बुरी हालत थी ! भूख-प्यास के मारे दम घुटा जा रहा था ! मुँह में जगह जगह छाले पड़े हुए थे ! उन्हें स्वयं अपने ऊपर सन्देह हुआ कि कहीं वास्तव में वे मरकर भूत तो नहीं हो गये हैं । संयोग से पास ही एक बँसवारी भी थी । जहाँ कुछ घनी छाया थी । मुंशीजी ने उसी में प्रवेश किया । वे अब स्वयं भूत बनने के इच्छुक थे !

रात में अन्धकार के घने होने पर मुंशीजी बाहर निकले । एक आदमी कंधे पर गठरी लादे हुए कहीं जा रहा था । मुंशीजी ने उसे आवाज़ दी । आदमी गठरी पटककर, सिर पर पाँव रखकर भागा । मुंशीजी की प्रसन्नता का क्या पूछना । गठरी खोली तो उसमें पचीसों लड्डू तथा चूड़ा-चना मिले ! तीन दिन तक के लिए खाद्य-सामग्री थी । वास्तव में यह फेंकुवा चमार था जो अपने गाँव लौट रहा था ।

पूरे तीन दिन तक ही मुंशीजी को अपने किसी पूर्व जन्म के पाप के फलस्वरूप यह एक यातना भोगनी पड़ी ! जब उनके उद्धार का समय आया, अर्थात् जब उनका सोया भाग्य जागा तो उनके गाँव में मड़ैया के मालिक बाबा मूसेदास पहुँचे ! उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि मड़ैया जलकर राख हो चुकी है ! पर वहाँ उन्हें एक पीतल का कमण्डल दिखाई पड़ा और कुछ अन्य भी ऐसी वस्तुएँ दीख पड़ीं जो जलने से बच गई थी ! बाबाजी को ध्यान आया कि ये सामान तो कनकटानन्द के मालूम पड़ते हैं ! कनकटानन्द आज ही कल में तीर्थयात्रा से लौटकर उनका दर्शन करनेवाला था भी । तब तक स्टेशन के एक कुली ने जो बाबाजी का बड़ा भक्त था, उन्हें आकर बतलाया कि उसने अमुक दिन कनकटानन्द को गाड़ी से उतरते देखा था ।

गाँववालों को काटो तो खून नहीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि जलनेवाले मुंशी चिरौंजीलाल नहीं वरन् बाबा कनकटानंद थे, तो वे प्रसन्न भी हुए और दुखी भी! प्रसन्न तो इसलिए हुए कि उनकी तेरही के दिन जो भोज होता, उससे वंचित रह गये। पर यह सन्तोष था कि न उनकी तेरही हुई, कनकटानंद की ही हुई। बाबाजी तो भण्डारा देंगे ही। क्या हमलोगों को प्रसाद बिल्कुल न देंगे!

फिर फेंकुवा पता लेने के लिए तथा भ्रमसंशोधन के लिए दौड़ाया गया। गाँववालों को फेंकुवा के द्वारा मुंशीजी की दुर्दशा का हाल मिल चुका था। वास्तव में यह गाँववालों की ही मूर्खता थी कि उन्होंने कनकटानन्द की हड्डियों को मुंशी चिरौंजीलाल की हड्डियाँ समझ ली थीं। कुछ नवयुवकों ने स्वयं मुंशीजी की ससुराल चलकर और उनका पता लगाकर उनसे क्षमा-याचना का विचार किया।

मुंशीजी के ससुराल में जब दस बारह व्यक्तियों ने पहुँचकर यह सुख-संवाद दिया तो सबके हर्ष का ठिकाना न रहा! बेचारी पत्नी को तीन दिन के लिए विधवा होना लिखा था! उसने अपना खोया सौभाग्य प्राप्त कर भगवान् को भक्तिभाव से प्रणाम किया और नाऊ बाभन को निछावर दिया।

गाँववाले मिलकर बँसवारी में गये! पर इस बार उनके हाथों में लुआठियाँ न थीं! ये लोग मिठाई, पानी, कपड़े आदि लिए हुए थे। मुंशीजी ने दूर से ही देखकर समझा कि फिर ये ससुरालवाले उन्हें बँसवारी में से भी खदेड़ने आ रहे हैं! किंतु इस बार वे भागे नहीं। सोचा निकट आने पर उन्हें समझाऊँगा!

पर इस बार समझाने की आवश्यकता ही न पड़ी! लोग उन्हें ही समझाने आये थे! ससुर, साले, भतीजे सभी ने उनके चरण छुए और अनजान में हुए अपराध के लिए क्षमा-याचना की! उन्हें पहिनाने के लिए वे लोग जो कपड़े लाये थे, उन्हें

लौटाते हुए मुंशीजी ने कहा—अभी रहने दीजिए। बिदाई के समय एकट्ठा ही दीजिएगा। मेरे कपड़े अमुक स्थान पर पेड़ के ऊपर हैं ! कुछ गलती आप लोगों से हुई, कुछ मुझसे भी। मैंने रोने-पीटने का शब्द सुनकर समझा कि फूफाजी मर गये हैं। एक आदमी ने कहा भी कि लालाजी के बहनोई का अन्तकाल हो गया ! मैं क्या समझता था कि मेरे मरने की ही खबर वह मुझे दे रहा था ! अब मालूम हुआ कि उसका मतलब आपसे न होकर छोटे लाला जी से था ! मैंने बेशक गलती की जो बाबा मूसेदास की मड़ैया में सोया ! कनकटानन्दजी मुझसे दो ही एक घण्टा पहले वहाँ पहुँचे थे। मालूम होता है कि गाँजा-वाँजा पीकर इधर उधर आग फेंक दी जिससे यह अग्नि-काण्ड हुआ। मैं पहिले ही उठकर चला आया था, नहीं तो मेरी भी वही गति होती और गति उससे बुरी ही हुई ! मैंने तो जीवित ही लुआठियाँ खाईं। वह भी साली-सरहजों के हाथ !

'बहनोई साहब, अब अधिक लज्जित न कीजिए ! हम लोग अपने अपराध के लिए आपसे क्षमा-प्रार्थी हैं ! सालियाँ और सरहजें भी अपने अपराध के लिए, यद्यपि उनका अपराध अधिक प्रचण्ड था, आपसे क्षमा-याचना कर लेंगी ! मलहम भी लगा देंगी ! अब कृपा करके उठिए और घर चलिए !

मुंशीजी को अब विश्वास हो गया कि उनके विदाईवाले एक जोड़ी बैल कहीं गये नहीं हैं। साथ में एकाध गाय भी मिल जाय तो कोई अचरज नहीं। भद्रा में चलने से जो भद्रा उतरने को थी, उतर चुकी थी ! अब कोई डर नहीं था !

सालियों ने कहा—जीजा जी, लाइए, घाव पर अमृतधारा लगा दूँ, तो मुंशीजी ने मुस्कुराते हुए कहा—अरे भाई ! तुम लोगों की निगाहों मे ही क्या अमृतधारा से कम असर है, जो दवा पोतने का कष्ट उठा रही हो।

'पेट' के कारण

मुंशी शहादतलाल का एकलौता लड़का जिस दिन एफ० ए०, पास हुआ, उस दिन मुंशीजी के दिमाग का क्या पूछना था। मारे प्रसन्नता के इतना खा गये कि घर के प्राणियों के लिए फिर से रसोई बनानी पड़ी। दूसरा कोई दिन होता तो मुंशियाइनजी इस अल्हड़पन और बुढ़भस या पाजीपन के कारण उनसे अच्छी तरह निपटतीं पर आज वे भी तो प्रसन्न थीं। इसलिए जब मुंशीजी उनसे बोले इबादत की अम्मा, आज तुम्हारा परिश्रम सार्थक हुआ। तूने ऐसा पुत्र उत्पन्न कर दिया था जो आज एफ. ए. पास होकर रहा! मेरे खान्दान में आज सात पुश्त तक कोई मिडिल पास भी न हो सका।

'क्यों नहीं, मेरी फुफेरी बहिन के नन्दोई के चचेरे साले का लड़का तो इण्टरेंस पास है! यह तुम कैसे कहते हो! तुम्हारे खान्दान में भले ही कोई न पास रहा हो, पर मेरे खान्दान में तो ऐसी बात नहीं? अभी खोजा जाय तो कई हित-नात मिडिल पास मिलेंगे।'

'अच्छा भाई, तुम बड़े घर की बेटी हो, तुम्हारे खान्दान में पढ़े-लिखे न मिलेंगे तो क्या मेरे खान्दान में! लेकिन यह तो तुम्हें मानना पड़ेगा कि इतना ऊँचा इम्तहान आसपास के दस-बीस जिलों में किसी ने पास नहीं किया है! मेरे बाप दारोगा ठाकुर सर्वनाशसिंह के मुहर्रिर ही रहे, मैंने थोड़ी तरक्की की कि तहसीलदार साहब का नायब पेशकार बना, लेकिन लड़के ने आज इज्जत रख ली। एफ. ए पास होने से वह खुद अब तह-सीलदार हो सकता है।'

'अच्छा! कहकर मुंशियाइनजी अपने पतिदेव का मुँह आश्चर्य के साथ आँखे फाड़-फाड़ कर देखने लगीं।

'और फिर परमात्मा ने चाहा तो तहसीलदार से होते होते लड़का डिप्टी कलेक्टर, कलेक्टर, कोतवाल और लाट कमिश्नर तक हो सकता है! जेहन का तेज है ही। देखने में भी सुन्दर है। त्यौरस साल मुंशी चपरासीलाल उसकी शादी अपनी लड़की से करने के लिए कितना जोर दे रहे थे। कह रहे थे लालाजी लड़का आपका साक्षात् कामदेव है कामदेव। और हाँ, उस समय तक तो लड़का एण्ट्रेंस भी पास नहीं हुआ था जब कि वे २०००) रु० तिलक और ५००) अपने दरवाजे पर देने को कह रहे थे। थान, थरिया, बर्तन बासन, गहना, कपड़ा लत्ता अलग से। अब तो परमात्मा की मेहरबानी से इसी लड़के का ५०००) कहीं गया नहीं है।

और क्या ३०००) तो उसी मेरी फुफेरी बहिन के नन्दोई के चचेरे साले के लड़के का तिलक चढ़ा था। और मैं तो खुद ही वहाँ मौजूद थी। थार एकदम चाँदी का लाए थे और बनारसी सिल्क का लपलपाता हुआ थान था। द्वारपूजा पर इतना बड़ा कलसा रखा था कि बेचारा नाऊ अकेले उसे उठा भी न सका। अन्त में मेरे छोटे भाई कसरतलाल ने उसे अकेले ही उठाकर सबसे शाबासी पाई।'

'अरे भाई कसरतलाल ही ठहरे। लेकिन अपने बड़े भाई बदहजमीलाल को क्यों भूल रही हो कि छोटे भाई के ऊपर इतना फूल रही हो! दोनों की तन्दुरुस्ती में कितना अन्तर है।'

'अच्छा-अच्छा तो इससे क्या हुआ! पाँचो अँगुली बराबर नहीं होती। बेचारे बदहजमी भइया को ईश्वर ने कोई लड़का नहीं दिया। एक पन्द्रह साल पहले होकर झुक चुका था। कसरतवा ने अब तक शादी ही नहीं की। आज दिन बदहजमी भइया को भी लड़का होता तो वह भी कम-से-कम एण्ट्रेंस पास होता।' यह सोचकर भ्रातृस्नेह और नैहर के प्रेम के मारे मुंशि-

याइनजी की आँखें डबडबा आईं। उनकी प्रसन्नता थोड़ी देर देर के लिए मन्द पड़ गई।

× × ×

आज लाला उजबकलाल मिर्जापूरी के घर पर बड़ी चहल-पहल है। एकलौती लड़की बुलकन की शादी गाजीपुर के मशहूर रईश मुंशी शहादतलाल के लड़के इबारतलाल के साथ आज ही रात में होनेवाली है। बारात अब आती ही होगी। घर से डेढ़ मील की दूरी पर एक नाले के पास बॅसवारी में जनवासा दिया गया है। शामियाना खड़ा हो चुका है! दो कुण्डे पानी से भर दिये गये हैं। घरपर हलवाई बिठाया गया है। चार तरह की मिठाइयाँ और दो तरह की नमकीन बन चुकी है। मित्र और नातेदार उजबकलाल को बिना माँगे ही सुन्दर-से-सुन्दर सलाह देकर अपने जन्म-जन्मान्तर के अनुभव का प्रगाढ़ परिचय दे रहे हैं। मुंशी मुतफन्नीलाल जो रिश्ते में उजबक के फूफा होते थे, बोले—बेटा, यह बड़ा अच्छा किया जो वहाँ डेढ़ मील पर नाले के पास जनवासा दिया! नजदीक बारात टिकाने में यही तो आफत है कि दम-पर-दम फर्माइशें चली आ रही हैं। एक-न-एक चीज घटी ही रहती है। समधी दमाद का तो पूजा-सत्कार नहीं अखरता, पर ये नाते के नात परनाते के ठॅगा, और ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे आकर जब रंग बाँधते हैं तो बड़ा नागवार लगता है।

'और क्या लाला मुतफन्नीलालजी आपका कहना एकदम ठीक है'—मुंशी पनचक्कीप्रसाद ने अपना सिर हिलाते और सुघनी सूॅघते हुए कहा—मेरी भतीजी की भी शादी में इसी तरह के कुछ लिहाड़े लौंडे-लपाड़े जुट गये थे। वह तो कहिए कि लड़के के दादा बड़े अच्छे मिजाज के थे, इसलिए लड़ाई-टण्टा नहीं होने पाया। लाठी चल जाने की पूरी तैयारी हो चुकी थी।

'हाँ साहब यह तो है ही। जब लड़के के घरवाले, कायदे के हों, तो बरतिहा क्या कर सकते हैं। उस समय जरूर दिक्कत पेश होती है जब खुद समधी ही टेढ़ा हो जाय।

'वाह यह मसल तो मशहूर ही है, जिसे सभी जानते हैं कि ब्याह-बारात में तीन चीजें टेढ़ी होती ही हैं—सिघा, नालकी और समधी।। यह कहकर लाला डेबरीप्रसाद ने सबकी ओर अपने विशाल अनुभव पर गर्व का अनुभव करते हुए विजयोल्लास-पूर्ण दृष्टि से देखा।

'भई मैं तो तिलक में नहीं गया था' लाला मुतफन्नीलाल बोले, 'पर सुना है कि मुन्शी शहादतलाल का मिजाज निहायत अच्छा है।

'जी हाँ, निहायत अच्छा। बेचारा एकदम भेंड़ है। हाँ अब नउनिया से यह पता चला है कि उनके घर में कुछ तेज मिजाज की हैं। और रुपयों के मामले में कुछ ज्यादा होशियार भी।

इसी तिलक में ललाइनजी ५०००) से कानी कौड़ी कम पर तैयार ही नहीं होती थीं। लालाजी तो ३०००) पर ही तैयार हो जाते पर बीबी के डर के मारे वे चूं भी नहीं कर सकते थे। अन्त में मैंने ललाइनजी के मैकेवालों का जोर पहुँचवाया तब कहीं ४०००) तिलक तय हो पाया। इतना कहकर मुन्शी उजबक-लाल ने माथे का पसीना पोंछा।

इसके पश्चात् कुएँ में चीनी छुड़वाई जाय या नहीं। जल-पान मे दो प्रकार की मिठाई और एक नमकीन हो या चार मिठाई और २ तरह की नमकीन रहे, पान के चौघड़े हों या दो-दो बीड़ों की खिल्लियाँ रहें, बर्फ अभी से जनवासे में भेज दी जाय या बरातियों के माँगने पर, आदि-आदि विषयों पर विचार-विनिमय होने लगा। ऐसा तो न होगा कि मिठाई नम-कीन के स्वाद आदि पर बराती टीका-टिप्पणी करें। यह एकदम सम्भव है। अतः लाला मुतफन्नीलाल सबके बहुत समझाने पर,

भीतर से इच्छा रखते पर ऊपर से अनिच्छा प्रकट करते हुए ज्योंही सब मिठाई नमकीन चखने चले कि बारात के बैंड बाजे का शब्द सुनाई पड़ा।

× × ×

'अच्छा! तो आप इसे लड़की के बाप के मुँह पर कह सकते हैं। आप मुझे बेवकूफ तो नहीं बना रहे हैं?'

'बिल्कुल नही? जिसके सामने कहिए, मै कह दूँ। साँच को आँच क्या? आप लोगों का धर्म बचाने के ख्याल से मैंने यह आपसे कह दिया। अब आप जानें और आपका काम जाने।

मुंशी शहादतलाल को तो साँप सूँघ गया! बेचारे क्या करें कुछ समझ में ही नहीं आता था! स्वभाव के शान्त थे, नहीं तो अब तक अनर्थ हो गया होता! खुद इन्ही की शादी में इनके चाचा मार कर बैठे थे! दम पर दम कड़ाही के बैगन हो रहे थे! पर भतीजे शहादतलाल वाकई में भेड़ थे! लड़ना या क्रुद्ध होना जानते ही नहीं थे! लेकिन क्या सिधाई के पीछे धर्म दे देंगे! मुंशीयाइन सुनेंगी तो क्या कहेंगी। सारा गाँव थूकेगा! हॉलाकि ऐसी दो तीन घटनाएँ उनकी बिरादरी में पहले भी हो चुकी हैं! पर वह इसे समाज के भय से नहीं, अपनी नैतिकता के नाम पर न होने देंगे!

एक से दो, दो से तीन कान होते होते सारे बाराती इस बात को जान गये! सबके सामान बँधने लगे! द्वारपूजा हो चुकी थी, लोग जलपान कर चुके थे। दो ही तीन घण्टों में विवाह का लगन आने वाला था। पर अब कहाँ का विवाह सिवाह! मुंशी-जी ने बिना लड़की वालों को खबर दिये ही चल देने का निश्चय किया। वे उन धोखेबाजों का मुँह देखना भी पाप समझते थे! यह तो अच्छा हुआ कि उस भले आदमी ने विवाह के पहले ही खबर दे दी, नहीं तो सेंधुर पड़ जाने पर तो जुलुम ही हो जाता!

हाँ, उस आदमी बेचारे का नाम नहीं पूछा जिसने मेरा इतना उपकार किया। उसे एक दिन घर पर बुलाकर भरपेट भोजन कराना होगा!

× × ×

नहीं साहब, आप यहाँ से हरगिज़ बारात नहीं ले जा सकते! विवाह-शादी कोई खिलवाड़ थोड़े ही है—मुंशी उजबकलाल ने तड़प कर कहा!

'हाँ, हाँ, खिलवाड़ तो नहीं है, पर जानबूझकर जीती मक्खी निगलना भी तो बुद्धिमानी नहीं है! आप अपनी लड़की की शादी कहीं और कीजिए! तिलक में और बारात लाने में मेरा जो कुछ खर्चा पड़ा है वह काटकर आप तिलक फेर लीजिए इस बार मुंशी शहादतलाल ने भी थोड़े रोषपूर्ण शब्दों में कहा।

मुंशी मुतफन्नीलाल बड़े घबड़ाए हुए थे। यह सब शरारत उन्हीं की थी। अभी दो घण्टे पूर्व वेष बदलकर वही आये थे और यह सब खुराफात पैदा कर गये थे! वे वेष बदलने में, तथा आवाज़ भी बदल लेने में बड़े निपुण थे! मज़ाकिया तबीयत के आदमी थे। लड़ाई लगाने में उन्हें स्वर्ग-सुख मिलता था। पर अपने भतीते उजबकलाल की लड़की बुलक्कन का जीवन नष्ट हो रहा था। और बुलक्कन उन्हें बहुत चाहती थी। पता नहीं क्यों भाँग के नशे में वे ऐसा दुष्कर्म कर बैठे थे। पर अब उनसे नहीं रहा गया। बोले—वाह! बेटा शहादत! मैंने सुना था कि तुम निरे बछिया के ताऊ हो! सो एकदम ठीक निकला! अरे लड़की को अगर पेट है तो यह कौन अचरज की बात है! हमें तुम्हें और इन आदमियों को पेट नहीं है! पता नहीं किस सूअर के बेटे, कमीने, पाजी ने तुम्हें यह कह कर चरका दिया! मालूम पड़ता है उसने तुम्हारी बुद्धि की थाह लेने के लिए ही यह प्रपंच खड़ा किया! अरे भाई समधियान में इसी तरह इम्तहान देना

होता है ! बुलाओ साले को सामने, मुझसे तो कहे ! लड़की अभी रजस्वला तक तो हुई नहीं, विश्वास न हो तो पास में ही किसी लेडी दाई को बुलाकर दिखवा लें ! भला यह भी कोई करता है कि कौआ कान लेकर भागा तो कान न टोए और कौए के पीछे लट्ठ लेकर दौड़ता फिरे ! मैंने दुनिया देखी है ! विवाह-बरात में ऐसे पुरानी कसर निकालनेवाले, पट्टीदार या दुश्मन खुराफात किया ही करते हैं ? धत् मर्दे आदमी कहीं के ! तुम खूब चपर-गट्टू बनने जा रहे थे ! वाह साहब सुन लिया कि लड़की को पेट है, तो यह भी न सोचा कि इसका मतलब क्या हुआ ! अरे किस लड़की को पेट नही होता !

जब चारो ओर से दोनों तरफ के लोगों ने मिलकर इस बात की सत्यता प्रमाणित करने का उद्योग किया तब कहीं जाकर मुंशी शहादत अली के मस्तिष्क में यह बात घर कर पाई। उनके सामने ऐसे अनेक दृष्टान्त रखे गये जिनमें लोगों के लगाने-बझाने के फलस्वरूप लड़के-लड़की का जीवन नष्ट हो चुका था और बाद में समधी को अपनी जल्दबाजी पर रोना पड़ा था !

खैर, आई हुई आँधी बिना कुछ किये निकल गई। रात में विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। कोई भी नहीं ताड़ सका कि यह सब पापड़ मुंशी मुतफन्नीलाल का ही बेला हुआ था। हाँ यदि किसी को रह-रहकर शक होता था तो मुंशी उजबकलाल को ही, कि हो न हो मुंशी मुतफन्नीलाल ही ने 'चोर से कहो चोरी कर, साव से कहो जाग' वाली कहावत चरितार्थ की हो।

मेरी भूल ! या ऐप्रिल फूल

उस दिन सन्ध्या समय दालान में ही बैठा हुआ मैं अपने साप्ताहिक पत्र के लिए अग्रलेख लिख रहा था। सारा मैटर छप चुका था। मेरे लिए ही पत्र रुका हुआ था। हर हालत में उसे कल निकल ही जाना चाहिए। मैं बड़े रोष के साथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों तथा एकेडमी के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ लिख रहा था कि इतने में महँगू ने आकर कहा—सरकार कोई औरत आपसे मिलने आई हैं।

मैं चौंक पड़ा। कौन हो सकती है। दो-चार बार कुछ सार्वजनिक कार्यकर्त्रियाँ मुझसे मिलने अवश्य आई हैं, पर कार्यालय में, घर-पर नहीं। और वे भी पूर्व सूचना देकर आई थीं। किसलिए आई थीं इस समय स्मरण नहीं आ रहा है। हाँ सम्भवतः हिन्दू-विवाह बिल के बारे में मुझसे कुछ सहायता माँगने। ये महाशया कौन हैं।

मैंने महँगू से कहा—जा भेज दे।

महँगू के जाते ही एक अत्यन्त सुसज्जिता तरुणी ने पदार्पण किया।

मैंने कुर्सी से उठते हुए कहा—आइए। आइए। विराजिए। आपको मैंने ठीक पहिचाना नहीं।

'खैर कोई हर्ज नहीं, मैं तो आपको पहचानती हूँ न! दोनों में से एक तो कम-से-कम पहिचानता है यही क्या कम है? युवती ने मुस्कराते हुए, कुछ नखरे के साथ कहा।

मैं चकित था। मैंने इसे कभी देखा नहीं। फिर युवतियों से मेरा परिचय नहीं। अब अधेड़ हो चला था। दो-चार बार ही महिलाओं से मिलने का अवसर मिला है, पर उनमें दो-तीन तो विवाह बिल वाली वृद्धाएँ थीं, और एक रानी साहिबा चपरास-

गढ़ थीं सो तो मर ही गईं। एक और कोई स्वयंसेविका या नर्स थी जो अब काफी वृद्धा हो चुकी होगी। पर इस युवती के रंग-ढंग कुछ ऐसे थे जिससे घनिष्टता झलक रही थी।

'अच्छा, आप किसलिए आई हैं।' मैंने कुछ घबड़ा कर पूछा—कारण अँधेरा हो चला था और मुझे लेख समाप्त करने की शीघ्रता थी।

'मैंने तो आपको कई एक पत्र लिखे थे, पर आपने एक का भी उत्तर नहीं दिया। मैं लाहौर के एक गर्ल्स हाई स्कूल की हिंदी-अध्यापिका हूँ और कविता से कुछ प्रेम रखती हूँ। आपके पत्र में मेरी पाँच या छः कविताएँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

मैंने भी सोचा कि चलकर स्वयं आपके चरणों में अपने को झुकाऊँ।

'अरे तो आप सिर्फ मुझसे मिलने के ही लिए लाहौर से यहाँ चली आई हैं। अभी तो आपके यहाँ छुट्टियाँ न हुई होंगी? स्कूल कब बन्द होता है आप लोगों का।

'छुट्टियाँ अभी कहाँ। अभी तो डेढ़ महीने की देरी है। पर मन नहीं मानता था। जब से मैंने दैनिक 'वसुमती' में आपका चित्र देखा, तब से तो और भो विकलता बढ़ गई। आपको पत्र ही लिखकर सन्तोष कर लिया करती थी।

मैं स्तम्भित था। युवती के शब्द तो बड़े सारगर्भित थे। हृदय में कुछ गुदगुदी होने लग गई थी। मेरे दर्शन के लिए विकलता का होना कुछ आश्चर्य की बात थी। मैं एक सफल पत्र-कार तो अवश्य था, पर किसी पत्रकार के दर्शन के लिए किसी का इतना उत्सुक होना कुछ आश्चर्यजनक ही था, फिर एक युवती का। और वह सुन्दर, शिक्षिता तथा कवियित्री भी थी।

'मेरे अहोभाग्य! जो आप लोग मेरी कला का इतना आदर करती हैं। अब ४५ वर्ष का हुआ। बीस वर्ष की ही अवस्था में मैं सम्पादन-क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ था। उस समय हिन्दी में नाम लेने के लिए ही एकाध पत्र थे। पर आज हिन्दी की आशातीत उन्नति हुई है। आपकी अवस्था क्या होगी। यही २५ वर्ष।

'जी हाँ, ठीक २५ वर्ष। आपका अनुमान कितना नपा-तुला निकला। वास्तव मे आपके लेखों को ही पढ़कर कोई भी समझ सकता है कि आपने इस ४५ वर्ष की ही उम्र में ६५ वर्ष वालों से कहीं अधिक अनुभव प्राप्त कर रक्खा है। हिन्दू-विवाह-बिल के बारे में आपने शास्त्रीय प्रमाणों के अतिरिक्त जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया था, उसकी मेरे स्कूल की अध्यापिकाओं में खूब चर्चा रही।'

'अच्छा, तो आप लोगों को वह लेख पसन्द आया।' मैंने कुछ गर्व का अनुभव करते हुए कहा। 'और आप लोगों ने उसमें कोई ऐसी बात तो नहीं पाई जिससे आपका मतभेद हो।'

'एक भी बात नहीं। हम लोगों का तो विचार हुआ कि एक बार लाहौर में बुलाकर आपका जुलूस निकाला जाय और सार्वजनिक सभाओं में आपसे भाषण भी दिलवाया जाय। हमारा दाम्पत्य-जीवन कितना कलुषित और कलहपूर्ण हो गया है कि जिसका कोई ठिकाना है। यह सब जैसा आपने लिखा है अनमेल विवाह का ही परिणाम है। यदि पति विद्वान् है, तो पत्नी मूर्ख, यदि पत्नी विदुषी है तो पति मूर्ख। हमारे देश के बड़े बूढ़े आदमी विवाह को मजाक समझते हैं। यह तो एक जीवन-व्यापी समझौता है जिसे बहुत सोच-समझकर युवक और युवतियों को ही करना चाहिए। आप ऐसे योग्य पति कितनों को मिलते हैं। कितनी अबलाएं इनके नाम रोया करती हैं।'

मैं मुग्ध था। कितना धाराप्रवाह भाषण दे रही है। लाहौर की जलवायु का पूर्ण प्रभाव इसके अंग-प्रत्यंग से झलक रहा था। अँधेरे में विशेष नहीं दिखाई पड़ता था। पर अब पेट्रोमैक्स लैम्प के आ जाने पर युवती का सौन्दर्य सच्चे रूप में दिखाई पड़ रहा था।

युवती का यह वाक्य कि 'अब ऐसे योग्य पति कितनों को मिलते हैं' मुझे प्रसन्न भी कर रहा था और दुःख भी दे रहा था।

मैं भी कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं वास्तव में सुयोग्य हूँ। परन्तु मेरी पत्नीजी मुझे निकृष्ट, अपदार्थ, निखट्टू, निकम्मा, वाहियात आदि विशेषणों से विभूषित किया करती हैं। मेरी योग्यता का उनके निकट कोई मूल्य ही नहीं। विशेष पढ़ी-लिखी हैं नहीं। फिर ऐसे पिता की सुपुत्री हैं जो रुपये को ही सब कुछ समझते थे। उनके पास चार चार आँटे की चक्कियाँ थीं। कुछ

लेनदेन का भी काम करते थे। कुछ फाटका-सरीखे काम भी करते रहते थे। यद्यपि इसी के पीछे उनका अधिकांश कमाया हुआ स्वाहा भी हो गया, पर इससे क्या। घर में अब भी ताँगा तो था। दो चार दर्जन फेरीदार तो थे।

पर उन्हें कौन जानता है ? कौन युवती उनका दर्शन करने लाहौर से चलकर प्रयाग आती है। मेरे ससुर और उनकी सुपुत्री मेरा साहित्यिक महत्व क्या समझ सकते हैं।

मैंने कुछ गम्भीर होकर कहना आरम्भ किया—आप ठीक कहती हैं। इस अनमेल विवाह ने तो कितनों का सर्वनाश कर दिया है। मैं स्वतन्त्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं मानता, फिर भी, विवाह के सम्बन्ध में बालक-बालिकाओं से कुछ पूछ लेना बुरा नहीं समझता। मानता हूँ कि उनके पास अनुभव नहीं, उनके माता-पिता अनुभवी हैं, और यह भी मानता हूँ कि विवाह के पूर्व का अनुराग एकदम उचित ही नहीं है, पर माता-पिता ही अपने उत्तरदायित्व का कहाँ ध्यान रखते हैं। कन्याओं को तो वे एक बोझ समझते हैं, जिस प्रकार उतार फेंके, वही ठीक। लड़कियाँ बेचारी शर्म के मारे क्या बोलें, जब कि लड़कों तक का कुछ मत प्रकट करना हमारे यहाँ घोर बेहयाई में गिना जाता है। हम भारतीय मध्यम मार्ग का अनुसरण करना तो जानते ही नहीं। या तो एकदम स्वतन्त्रता की पुकार मचानेवाले लोग मिलेंगे या एकदम दकियानूसी। अच्छा, यह तो बताइए, आपने अब तक अपना विवाह क्यों नहीं किया ?

युवती ने लजाते हुए कहा—मेरे माता-पिता तो बचपन में ही जाते रहे। चाचा ने पालन किया। मैं जब बी० ए० पास होकर स्कूल में अध्यापिका हुई तो उस वर्ष वे मेरी शादी करना चाहते थे। पर मेरी शादी के लिए एक ऐसे व्यक्ति चुने गये थे जो इंगलैंड से लौटकर बैरिस्टरी कर रहे थे। पठित तो थे, पर

हिन्दी से उन्हें घृणा थी और भारतीय संस्कृति की खिल्ली ही उड़ाते रहते थे। मुझमें अभी भारतीय भावनाएँ अवशिष्ट हैं और मुझे हिन्दी-साहित्य से प्रेम है। अध्यापिका तो मैं यों ही हो गई, वास्तव में पत्रकार-कला की ओर ही मेरा अधिक झुकाव रहा है। अपने छात्र-जीवन में भी मैंने कई हस्तलिखित पत्रिकाएँ निकाली थीं। मेरे पिता भी वहाँ के एक हिन्दी अखबार के सम्पादक थे। अब वह अखबार तो बन्द हो गया है, पर उसका नाम आपने अवश्य सुना होगा।

'कौन सा अखबार था वह ?'

'देश-दर्पण।'

'ओ हो।' मैंने बात काटकर कहा—तो आप मुंशी भुवन-मोहनलाल की सुपुत्री हैं। यह जानकर मुझे और भी हर्ष हुआ। मेरे तो वे एक प्रकार से गुरु थे। एक बार वे प्रयाग आये थे और मुझे यहीं 'ठीक इसी जगह दर्शन दिया था! वे ठीक यहीं बैठे थे, जहाँ आप बैठी हुई हैं। तब तो आप मेरी स्वजातीय ही हैं! कहिए उनकी कोई अप्रकाशित पुस्तक रह गई, थी, उसका आधा 'खगोल प्रेस ने छापा भी था, उसका क्या हुआ!

हम दोनों एक दूसरे की ओर किसी अज्ञात प्रेरणा से बढ़ रहे थे। भाग्य की बात थी कि श्रीमतीजी आज सवेरे से ही पास में ही अपनी किसी मौसी के यहाँ गई हैं और कल सवेरे आने को कह गई थीं! इसी कारण हम दोनों का वार्तालाप कुछ अधिक सरस हो रहा था।

सुप्रभा से मुझे यह मालूम हुआ कि वह मुझे अपना एक काव्य-ग्रन्थ समर्पित करना चाहती है। उसके भावों तथा वार्तालाप से यह स्पष्ट हो चला था कि वह केवल मुझपर उसी प्रकार मुग्ध नहीं है जिस प्रकार एक कलाकार दूसरे पर मुग्ध होता है, वरन् उसकी मुग्धता में कुछ सरसता, सजीवता, सबलता और

सार्थकता भी है ! मैं कुछ कुछ स्वयं भी आत्मविभोर और अन्य-मनस्क-सा हो चला था। अपने विवाहित जीवन से मैं यदि दुःखी नहीं था तो सुखी भी नहीं था। लाहौर जाकर सुप्रभा के साथ हिन्दी के प्रचार-कार्य में बहुत कुछ सहायता कर सकता था। श्रीमतीजी को मेरा दो-चार साल का वियोग भला क्या अख-रेगा ! उन्हें रुपये भेज दिया करूँगा। वे इधर कई वर्षों से मैके भी नहीं गई हैं। और फिर देखा जायगा। हिन्दू तलाक बिल तो कौंसिल में पेश ही है।

सुप्रभा ने पुस्तक निकाल कर मेरे सामने रख दी। उसमें समर्पणवाले पृष्ठ पर वसुमती से काटकर मेरा चित्र चपका कर, मुझे पुस्तक अर्पित की गई थी। नीचे लिखा था 'चरणदासी' सु०।

मैं अपने को भूल-सा गया। उन्मत्त की भाँति सुप्रभा की ओर बढ़ा ही था कि देखा सामने हाथ में चरनदासी लिए श्रीमतीजी खड़ी हैं और कह रही हैं—यह तोता-मैना-संवाद कब से चल रहा है बताओ ?

मैं काँप उठा सुप्रभा की ओर देखने का साहस न हुआ ! पर सुप्रभा ने स्वयं मुझे गले से लिपटा लिया। मैं चौंक पड़ा। देखा सुप्रभा न थी। उसके स्थान पर खड़े थे मेरे साले साहब चि० महेन्द्र। वे बोले जीजाजी एप्रिल फूल की बधाई ! पर मैं खड़ा था—एकदम शान्त, हतप्रभ और झुका हुआ।

भदोही का अ० भा० कवि-सम्मेलन

जिस समय तार के चपरासी ने गली में आवाज़ दी, उस समय पण्डित हरबोंग उपाध्याय कविरत्न पीढ़े पर बैठकर रोटी को तोड़कर दाल में छोड़ने का विचार कर रहे थे। घर में कोई नौकर न रहने से बड़-बड़ाते हुए स्वयं तार लेने चले। पंडिताइन-जीने सोचा कि उनके ममेरे भाईकी चाची स्वर्गलोक सिधारी हैं, उसीका संवाद आया है। कारण उनकी बीमारी इधर बढ़ गई थी। वे पहले से ही अशौच मनाती हुई रसोईघरसे बाहर निकल आईं और सिसक-सिसककर रोने लगीं।

उपाध्यायजी कविरत्न थे, और कवि-सम्मेलनों में प्रायः ही आते-जाते रहते थे। पर उनके पास इस प्रकार के कामों के लिए तार नहीं आता था। एक बार उनके भतीजे की बीमारी का तार बम्बई से अवश्य आया था। यह आज पहला अवसर था जब कवि-सम्मेलन के बारे में उनके पास तार-द्वारा सूचना आई थी। उसमें यह भी लिखा था कि आप अवश्य आवें, आने पर इंटर का किराया तो मिलेगा ही, दस रुपये और भी अर्पित किये जायँगे।

अतः कविरत्नजी जो अपने भाग्य को कोसते हुए पीढ़े पर से उठ आये थे, जब मुस्कराते हुए सीढ़ियों पर से ऊपर की मंजिल में पहुँचे तो पंडिताइनजी को घिघियाते देखकर स्तब्ध हो रहे। वे आश्चर्य से बोले—अजी, रोती क्यों हो! इसमें रोने की क्या बात है।'

पण्डिताइनजी ने सोचा अवश्य ही उनके ममेरे भाई की—चाची स्वर्ग सिधारी है तभी पण्डितजी उन्हें सान्त्वना देकर रोने से मना कर रहे हैं। फलतः उनका कण्ठ-स्वर और भी प्रबल हो उठा! अब पण्डितजी से रहा न गया! वे तड़पकर बोले—पहले, पूरा समाचार तो सुन लेना चाहिए। यह क्या कि

किसी ने कहा कि कौआ कान ले गया तो कान न टटोल कर कौए के पीछे ही दौड़ने लगे ! अरे, यह तार किसी के मरने-जीने के बारे में नहीं है, यह कविसम्मेलन का निमन्त्रण है, निमन्त्रण ! उठो, हाथ धुलाओ, भोजन कर लूँ, तब पूरा वृत्तान्त बतलाऊँ !

पण्डिताइनजी ने जब यह सुना कि भोजन करने के बाद वृत्तान्त सुनावेंगे तो उनका सन्देह और पक्का हो गया ! रोते ही रोते बोलीं—धो क्यों नहीं लेते हाथ ! तुम्हें तो सदा भोजन ही करने की पड़ी रहती है ! तुम खाओ, मैं तो नहीं खाऊँगी बिना तारे देखे हुए ! चाचीजी के नाम पर एक वक्त का भोजन तक बन्द नहीं किया जा सकता ! लोग कुत्ते-बिल्ली का भी मरना सुनकर कुछ देर नहीं खाते-पीते ! और एक तुम ऐसे पेटू हो कि बिना भोजन के चैन ही नहीं ! अरे दीपक जलने या तारे निकलने तक तो ठहर जाते !'

अरे तुम्हारी ऐसी कुन्द बुद्धि को कौन समझावे ! कह तो दिया कि यह मरने का समाचार नहीं है, न्योता है न्योता, कवि-सम्मेलन का ! पर तुम समझने का प्रयत्न करो तब तो !'

अच्छा, अच्छा, रहने दो। मुझे तुम नहीं चरा सकते ! कवि-सम्मेलन के न्योता और तार से क्या मतलब। न्योता भी कहीं तार से आता है। तिलक-व्याह का न्योता तो सुपारी बाँट कर हद से हद कागज छपवाकर आता है, कवि-सम्मेलन का न्योता तार से आवेगा ! फिर न्योते में तो किसी देवता की मूर्ति छपी रहती है, इसमें यह सब कहाँ है। तार तो सिर्फ किसी गमी के बारे में आता है।

पण्डित हरबोंग उपाध्याय ने जब हाथ में जनेऊ लेकर शपथ खाया कि दस रुपये दक्षिणा समेत इण्टर क्लास किराया देने की बात इस तार-निमन्त्रण में है तब कहीं जाकर कविरत्न की पत्नी को विश्वास हुआ। यों कविरत्नजी कसम न खाते, पर दूसरे ही

[library stamp]

दिन सवेरे की गाड़ी से भदोही के लिए प्रथान करना था, और अभी रुपयों आदि का प्रबन्ध करना था, इसलिए उन्हें पत्नी के आगे हार माननी पड़ी। रुपये किसी पेड़ में तो फलते नहीं कि जब चाहा तोड़ लिया। पत्नी की चाँदी की हँसुली गिरवी रखकर दस-बारह रुपयों का प्रबन्ध किया और दूसरे दिन तीन बजे ही उठकर आप स्टेशन के लिए चल पड़े।

× × ×

जिस गाडी से कविरत्न उपाध्यायजी जा रहे थे उसी गाड़ी से पटना के 'त्रिशंकु' जी, मैनपुरी के 'उजबक' जी, हरदोई के 'लम्पट' जी, मिर्जापुर के 'मराल' जी, प्रयाग के 'प्रवाल' जी, गाजीपुरके 'गँवार' जी, बस्ती के 'विकराल' जी और बनारस के 'बेहाल' जी भी जा रहे थे। ठाकुर गोपालशरणसिंह इस कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करनेवाले थे। पर इस ट्रेन में उनका कोई भी चिह्न न था। एक डब्बे में दो तीन कवयित्रियाँ भी अपने मामू, चाचा और पतियो के साथ इस कवि-सम्मेलन रूपी महाकुम्भ पर्व का पुण्य लूटने जा रही थी। एक छायवादी कवि, जो बिल्कुल 'क्लीनशेक' और थोड़े हसीन थे, विना टिकट के यात्रा कर रहे थे। उनके सिर पर के घुँघराले बाल कम-से-कम तीन हाथ लम्बे थे। टिकट चेकर ने उनसे टिकट माँगा तो वे बड़े घबडाये। टिकट चेकर बेचारा वड़ा सज्जन था। बोला—आपने टिकट नही खरीदा ? आपके साथ कोई पुरुष नहीं है क्या ! आजकल गुंडे-बदमाश बहुत हैं। आप लोग बिना टिकट और अकेली सफर मत किया करें। जब सब कवियों ने उनसे कहा—महाशय ये स्त्री नही पुरुष हैं तो वे बहुत बिगड़े। बोले—जनाब, आप लोग मजाक करते हैं। मैं बूढ़ा हुआ, बहुत जमाना देख चुका हूँ। मेरे सामने के आप लोग छोकड़े हैं। आप लोग कवि हों, या कवि। हैं तो लड़के ही ! मैं आपलोगों के दादा की

उम्र का हूँ। कम-से-कम अवस्था का लिहाज किया कीजिए। फिर मैं ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मण कनौजिया। चालीस बिस्वेवाला। आपलोग यहाँ बैठे एक दूसरे की जूठी मिठाई खा रहे हैं। मैं बिना जूता उतारे पान भी नहीं खाता! ईश्वर की दया से रोज ही आप-सरीखे यात्री मिला करते हैं। मैंने धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं। अब आप लोग मुझे स्त्री और पुरुष का भेद समझावेंगे। फिर किसी अबला के विषय में आप-सरीखे पढ़े-लिखे व्यक्तियों को हँसी-दिल्लगी करना शोभा नहीं देता।

छायावादी कविजी, (क्षमा कीजिएगा, उनका नाम उपाध्यायजी ने मुझे बता दिया है, पर मैं आप लोगों को न बतलाऊँगा) टिकट चेकर को ये बातें सुनकर मुस्करा रहे थे। बाकी कविगण हँसना चाहते थे, पर डर के मारे हँसी को दबाये हुए बैठे थे।

खैर, लोग भदोही पहुँचे। गाड़ी केवल पाँच घंटे लेट थी। स्टेशन पर स्वागत-मन्त्रीजी के चपरासी का भतीजा आया हुआ था। सुना स्वागत-मन्त्रीजी ट्रेन का लेट होना सुनकर स्टेशन से लौट गये थे। डेरे पर पहुँचने पर यहाँ उन्होंने उसके लिए बड़े ही विनीत शब्दों में सबसे क्षमा याचना की। फिर सबके लिए एक-एक ग्लास खाँड़ और दही का ताजा शर्बत तथा भाँग की गोली का प्रबन्ध किया गया। कवियों ने यह निश्चय किया कि कविसम्मेलन के पहले ही भोजन कर लेना चाहिए। पता नहीं सम्मेलन कितने बजे समाप्त हो। इसलिए ७ बजे उनलोगों ने खूब डटकर भोजन किया। 'प्रवाल' जी ने कहा कि उन्हें कई महीनों से संग्रहणी की शिकायत है, वे केवल अनार का रस पी सकते हैं। अनार की खोज हुई। वह उस समय न मिल सका। कुछ नीबू लाये गये। तब प्रवालजी भोजन भी कैसे कर सकते थे। फलतः नीबू के रस पर ही टपना पड़ा। गँवारजी गाय का

धारोष्ण दूध पिये बिना कविसम्मेलन में जाने को तयार ही न होते थे। उनका कहना था कि पिछले १८ वर्षों से वे नित्य, बिना एक भी नागा पड़े, सन्ध्या को धारोष्ण दूध पीते हैं। खैर, उनकी मनोकामना पूरी की गई। छायवादीजी को निरामिष भोजन करने में बड़ा कष्ट होता था। अतः वे एक होटल में भेजे गये।

राम राम करते कवि-सम्मेलन में जाने का समय आया। तीन इक्के मॅगवाये गये। सुना उस दिन वहाँ के सब इक्के किसी बारात में मॅगवा लिये गये थे। इन्हीं तीन इक्कों पर चौदह कवि सवार कराये गये। 'उजबक' जी अभी तक दाढ़ी घुटवा रहे थे और लम्पटजी बालों में कंघी कर रहे थे। किसी प्रकार सब लोगों के बहुत समझाने पर इन्होंने शीघ्रता की। 'बेहाल' जी मैदान की ओर निपटने गये थे। उन्हें भदोही में आने पर कुछ अति-सार की शिकायत हो गई। पता नहीं भोजन की खराबी से या मात्रा की अधिकता से। कवयित्रियाँ बेचारी बैठी हुई थीं कि कविगण को पहुँचाकर इक्का लौटे तो उन्हें सम्मेलन पण्डाल में पहुँचावे। उन्हें यही सन्तोष था कि उन्हें पान-इलायची देने तथा उनका सुप्रबन्ध करने के लिए डेढ़ दर्जन से अधिक छात्र, युवक और प्रबन्धक वहाँ उपस्थित थे।

सम्मेलन ६ बजे प्रारम्भ हुआ। इसके लिए ६॥ बजे का समय घोषित था। अतः जनता ५ ही बजे से एकत्र हो गई थी। लोग चिल्ला चिल्लाकर प्रबन्धकों को गालियाँ दे रहे थे। समय के सदुपयोग और अंग्रेजों की पक्चुएलिटी के बारे में कुछ लोग आपस में भाषण भी दे रहे थे। तब तक पान चबाते, छड़ी घुमाते, आँख मटकाते कविगण आ पहुँचे, इसलिए कोलाहल अपने अपने आप शान्त हो गया।

ठीक एक बजे सम्मेलन समाप्त हुआ। लोग पैदल ही चलकर डेरे पर लौटे। इतनी रात सवारी कहाँ मिलती। कवयित्रियाँ भी

पैदल ही आईं। उपाध्यायजी गठिया के पुराने रोगी थे। सर्दी से उनका बुरा हाल था। विकरालजी ने जब देखा कि चारपाई का कोई प्रबन्ध नहीं है, तब उन्होंने अपने नाम और रूप की व्याख्या करनी प्रारम्भ की। 'मै ऐसे बेहूदे कविसम्मेलन में कभी न आता। त्रिशंकुजी की मित्रता के कारण उनके बहुत जोर देने से चला आया। एक साथ ही सब कवियों ने एक दूसरे पर एह-सान लादते हुए यही कहना शुरू किया। मरालजी प्रवालजी के कारण चले आये थे, नहीं वे कब ऐसे सड़ियल कविसम्मेलन में आने को! लम्पटजी को उजबकजी के ही कारण यह परिश्रम उठाना पड़ा था! बेहालजी ने गॅवारजी से डपटकर कहा—भाई, फिर मुझे कभी पत्र न लिखना। यह सब अपमान तुम्हारे कारण हो रहा है। यहाँ इण्टर के किराया मात्र पर मैं चला आया, आज ही पटना से तार आया था कि पचास रुपये देंगे, पर आपकी मित्रता के विचार से मुझे आर्थिक हानि उठानी पड़ी। त्रिशंकुजी ने दस या बारह जगहों के नाम गिनाये जहाँ से उन्हें आज ही कविता पढ़ने को निमन्त्रित किया गया था।

आपस में एक दूसरे को डाँट-डपट कर ये लोग भुनभुनाते हुए सोने चले तो स्वागत-मन्त्री ने पूछा—तो आज्ञा हो तो मैं भी जाकर सोऊँ, कल सवेरे आ जाऊँगा। गाड़ी ८॥ बजे जाती है। मैं शाम तक आ जाऊँगा! कोई और सेवा हो तो कहिए।

बुझती हुई आग में घी पड़ जाने से वह भभक जाती है, उसी प्रकार सब कवियों की दशा हुई! वे एक साथ चिल्ला उठे—जाइएगा नहीं तो क्या हम लोगों के पाँव दबाइएगा? इतनी सेवा क्या कम है। लम्पटजी बेचारे को एक कम्बल तो मॅगवा दीजिए! ये बिना ओढ़ने-बिछौने के ही चले आये हैं। क्या जानते थे कि इतनी रात को सम्मेलन समाप्त होगा?

स्वागत-मन्त्री क्षत्रिय थे। कहाँ तक सहते। बोले—वाह साहब; जनता अलग नाराज और आप लोग अलग झल्ला रहे हैं। ६॥ के बजाय ६ बजे आप ही लोगों के कारण सम्मेलन शुरू हुआ। मेरा क्या दोष। बिना दाढ़ी बनवाये कविता नहीं पढ़ सकते थे। चारपाई हम कहाँ से लावें। पब्लिक का काम है। आप लोग तो समधी दामाद से भी बढ़कर ऐंठ दिखला रहे हैं। यह ऐंठ किसी और को दिखलाएगा। आप लोगों की करनी तो ऐसी है कि किराया तक देने को जी नही चाहता है और किस मुँह से किराया लीजिएगा ? कौन सा परिश्रम ही किया है आपने। आपमें से किसी एक ने समस्यापूर्ति की थी! वही पुरानी कविताएँ सुनाईं जो अखबारों में छप चुकी थीं। उनमें भी दो ही एक की जमी। बाकी लोग तो नायिका की तरह गलेबाजी कर रहे थे। जनता कविता सुनने आई थी, गीत सुनने नहीं। इससे अच्छा था कि हम लोग कुछ कत्थक या तवाइफे बुला लिए होते। ठाकुर गोपालशरणसिंह के आने का भरोसा था, वे भी नहीं आये। पता है उनके न आने पर पब्लिक क्या कह रही थी। यही न कि सिंह नही कुछ स्यार अवश्य आये हैं।

कविगण चुप। ईंट का जवाब पत्थर से दिया जा रहा था। स्वागत-मन्त्री का पलड़ा मजबूत पड़ रहा था। क्षत्रिय-रक्त में जोश भरा था। वह कहता ही गया—रही ओढ़ने-बिछौने की बात ! तो हम लोग पर साल भोग चुके हैं। एक महाशय इसी प्रकार बिना ओढ़ने-बिछौने के चले आये थे। उन्हें बिल्कुल नई रजाई, तोशक, तकिया आदि दिया गया। दूसरे दिन शीघ्रता में किसी को ध्यान ही नही रहा। वे चुपके से वह सब लेकर चलते बने। बाद मे मालूम हुआ कि वे कई स्थानों पर यह सुकर्म कर चुके हैं। आप लोग कुछ भी हो हमारे अतिथि हैं और पढ़े-लिखे हैं, इसी से आपकी बातें मैंने सह ली हैं। अब तो मैंने

प्रण कर लिया है कि अगले वर्ष से चाहे रण्डियों का नाच भले करा लूँ, कवि-सम्मेलन का आयोजन न करूँगा !

कवि लोग थोड़ा कलबलाये। 'निरंकुशा कवयः' और 'विधि से कवि सब विधि बड़े' वाले आदर्श कथन इस उजड्ड ठाकुर ने नहीं सुने हैं क्या ? कुछ लोगों का रक्त गर्म हुआ, पर पूस का महीना होने से वह तुरन्त ही ठण्ढा भी हो गया। त्रिशंकु और विकरालजी पहले से ही किराया ले चुके थे इसलिए उन्होंने तो उसी समय बिस्तर बाँधी और स्टेशन के लिए चल पड़े। जाड़ा सह लेंगे, पर यह फटकार तो असह्य है। कुछ और कवि भी जिन्होंने यद्यपि पेशगी किराया नहीं प्राप्त किया था, पर जिनके पास किराया भर निजी रुपये थे, चलने की तैयारी करने लगे।

पं० हरबोंग उपाध्याय की बुरी हालत थी। वे अभी दो ही चार बार बाहर के कविसम्मेलनों में गये थे और इस प्रकार के वाग्युद्ध के साक्षी होने का उनका पहला अनुभव था। वे बड़े घबराये। सोचा, कहीं गेहूँ के साथ घुन न पिस जाय! उनके मानस-चक्षुओं के समक्ष पत्नी की चाँदी की हँसुली थी। उन्होंने कुछ कवियों को समझाया और रोका। साथ ही स्वा० मन्त्री से भी उन्होंने सबकी ओर से क्षमायाचना की! उनका यह व्यवहार यद्यपि सकारण था, फिर भी इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। और लोग तो सो गये, पर उपाध्याय जी को रातभर नींद न आई। पर उनकी यह तपस्या सफल हुई। कारण उन्हें जितने की आशा थी, उससे तीन रुपये अधिक मिले। औरों की रकम में कुछ-कुछ कमी कर दी गई।

पर वे सब कवि अब भी सम्मेलनों में जाते हैं, यदि कोई नहीं जाता तो वे हैं कविराज पं० हरबोंग उपाध्याय।

'सम्पादक या आफ़त'

परमात्मा न करे कि किसी हठी से पाला पड़ जाय। संपादन आरम्भ करने के पहले लोग 'हठयोग' भी सीख लिये रहते हैं क्या? इस समय दो ही पदार्थ सस्ते हैं, जी, इस महँगी के भी समय। वे दोनों पवित्र और विचित्र पदार्थ हैं कविसम्मेलन और सम्पादक। इस बेकारी के युग में इन दोनों से क्षणभर के लिए जनता का मनोरंजन अवश्य हो जाता है, पर जैसी बीतती है बेचारे लेखकों और कवियों पर, उसे वे ही जानते होंगे या उनका दिल ही जानता होगा।

मिर्जापुर के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'पटवारी' के सम्पादक श्रीयुत खराबदास सिनहा, मेरे उन मित्रों में हैं जो मेरे यहाँ बचपन में चपत और चपातियाँ खाकर ही आनन्द का अनुभव किया करते थे। मेरे साथ ही वे हाईस्कूल की परीक्षा में भी बैठे थे। विलायत एक स्वाधीन देश है इसी कारण वहाँ 'राबर्ट ब्रूस' का नाम अमर है। पराधीन भारत में राबर्ट ब्रूस से कहीं दूनी लगन के व्यक्ति बाबू खराबदास को अभी तक लोग नहीं जान पाये हैं। आपकी लगन और धुन का यही एक नमूना पर्याप्त होगा कि आप हाईस्कूल में उस वर्ष फेल होने के बाद हताश न हुए और बराबर परीक्षा देते गये और अन्त में उस वर्ष पास होकर ही रहे जिस वर्ष मेरे साले साहब के सुपुत्र उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। हाँ, साहित्यरत्न में आपने एक ही बार मे सफलता प्राप्त कर ली। उसके एक प्रश्नपत्र के किसी अलंकार विषयक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने इस बात का बडी युक्ति के साथ प्रतिपादन किया था कि जब छेकानुप्रास, लाटानुप्रास आदि को अनुप्रास माना जा सकता है तो च्यवन-प्रास को भी अनुप्रास का ही एक भेद मानना चाहिए।

मैं उनकी इस विशेषता के कारण नहीं, वरन् उनके भोलेपन की वजह से अपने इस पुराने मित्र से प्रेम करता हूँ। किन्तु कभी-कभी लोग मित्रता का दुरुपयोग भी करना चाहते हैं या हिन्दुस्तानी भाषा में यों कहिए कि नाजायज फ़ायदा उठाना चाहते हैं। और यही बात खटकनेवाली होती है। भला बतलाइए प्रति सप्ताह 'लेख भेजिए, लेख भेजिए' लिखकर दिमाग खराब करना भी क्या किसी कुलीन व्यक्ति या सभ्य-समाज का आचरण समझा जा सकता है।

इन सम्पादकों को लाख समझाइए—भैय्या, तनिक अवकाश नहीं है। बीबी और बच्चों की माँग के कारण चित्त यों ही चिन्तातुर रहता है, तुम लोग भी इस प्रकार तंग करोगे तो कैसे काम चलेगा। पर जिस प्रकार बिदाई की समस्या उपस्थित होने पर ससुर साहब एकदम मौन धारण करना ही उचित समझते हैं, उसी प्रकार ये सम्पादक नामधारी जन्तु भी इस प्रश्न को विचार-कक्षा में रखने के लिए तत्पर नहीं मालूम पड़ते। पुरस्कार का प्रलोभन देते हैं। पर भइया लेख या कविता केवल पुरस्कार के प्रलोभन से ही तो नहीं निर्मित हो सकते। उसके लिए विशेष 'मूड' या मानसिक स्थिति की आवश्यकता हुआ करती है। पर सम्पादक लोगों के पास जब विचार-शक्ति या विवेक नामक वस्तु हो तब तो।

किसी इटैलियन लेखक ने सम्पादक की तुलना ऊँट से की है। किस लेखक ने यह मुझे स्मरण नहीं। यह भी विचार करने की बात है कि इटली में ऊँट होते भी हैं या नहीं। पर उसने, अर्थात् उस लेखक ने ऊँट से तुलना की है अवश्य, इसमें आप तनिक भी सन्देह न मानिए। ऊँट को आप नन्दन कानन में भी छोड़ दीजिए तो वह वहाँ भी नीम के पेड़ का ही अनुसन्धान करेगा। सम्पादक जिस सभा-समिति या उत्सव मे जायगा वहाँ कुछ दोष ही ढूँढ़ने का प्रयत्न करेगा। दूसरों की आलोचना,

(आलोचना के प्रचलित अर्थ निन्दात्मक टीकाटिप्पणी से मेरा मतलब है*) करने में जो जितना ही दक्ष होगा वह उतना ही सफल सम्पादक होगा। कभी-कभी तो जब दूसरे विषय आलोचना के लिए नहीं मिलते, तो सम्पादक लोग आपस में ही एक दूसरे की आलोचना करके विषय पूर्ति कर लेते हैं। भला बताइए, किसी के निजी कामों या व्यक्तिगत कार्यों के प्रति असन्तोष प्रकट करने के लिए ये सम्पादक क्यों इतने उत्सुक रहते हैं। अभी इस बार मिस श्यामकुमारी नेहरू ने मिस्टर जमील खाँ से विवाह कर लिया था तो ये सनातनधर्मी पत्र-सम्पादक कितना उछले-कूदे थे। क्यों ? इसीलिए कि इनके पास विवाह का निमन्त्रण-पत्र नहीं आया था। मैं तो यही कारण समझता हूँ, और लोग चाहे जो समझें। यदि मिस नेहरू को किसी हिन्दू युवक से विवाह करने में सन्तोष का अनुभव नहीं होता था और उनका सारा प्रेम किसी मुस्लिम शक्ति पर केन्द्रित हो गया था तो इन सम्पादकों के बाप का इजारा। आखिर ये खूसट किसी की प्रेम-क्रीड़ाएँ या रंगरलियाँ नहीं देख सकते तो अपनी आँखें ही क्यों नहीं फोड़ डालते। यह तो किया नहीं, उल्टे लम्बे-चौडे शीर्षक देकर इस कार्य का विज्ञापन किया और उल्टी-सीधी सुनाई। और भी समाचार-पत्र तो थे। उन सबने तो इस साधारण बात को उतना महत्व नहीं दिया, किसी पृष्ठ के किसी कोने में, जहाँ उक्त समाचार का छपना किसी तिला का विज्ञापन छपने के बराबर ही था, छाप दिया और एक भी टिप्पणी न दी। क्या इन गैर सनातनी पत्रों के सम्पादकों की प्रतिभा सो गई थी। नहीं, एकदम चेतन्य था। पर उनके पास सम्पादन-कला की विशेषता थी।

---

* यद्यपि किसी कोषकार ने 'आलोचना' का यह अर्थ नहीं लिखा है, पर स्वय 'आलोचकों ने इस शब्द को इसी अर्थ में ग्रहण किया है।

पर मेरे मित्र बाबू खराबदास सिनहा ऐसे सम्पादकों में नहीं हैं। वे सीधे और सरल हैं। इतने सरल कि उन्हें सरल का चरम रूप जिसे प्रचलित भाषा में 'भोंदू' कहते हैं, कहा जा सकता है। मुझे उनकी सरलता बड़ी अच्छी लगती है। यदि उनकी कोई बात अच्छी नहीं लगती तो वह है उनकी तकाजेवाली आदत। जब मैं एकाध सप्ताह तक लेख नहीं भेजता, वे तुरन्त कभी पैसेंजर ट्रेन और कभी तूफान मेल से मेरे यहाँ दाखिल हो जाते हैं। मेरा लेख न मालूम वे क्यों प्रत्येक अंक में देना चाहते हैं। शायद मित्रता के ही कारण।

चौक से सुर्ती, सुंघनी, सुपारी, सेफ्टी, कंघी, कत्था, कलमदान, करमकल्ला और कनटोप आदि गृहस्थी की आवश्यक वस्तुएँ लेकर मैं लौटता हूँ तो क्या देखता हूँ लाला खराबदास बाहर बरामदे में बिस्तर बिछाकर बैठे हैं और उनका झोला सोंटा इत्यादि मेरी आरामकुर्सी पर रक्खा है। मेज पर जलपान का सामान ज्यों का त्यों धरा है। चाय ठण्ढी हो गई है पर पी नहीं गई है।

मैंने आते ही पूछा—भले आदमी, यह कैसा योगासन लगा रक्खा है। जलपान अब तक क्यों नहीं किया और जमीन पर बिस्तरा क्यों बिछाया है। खैरियत तो है।

'रहने दो अपना जलपान सलपान। जलपान करने के लिए मैं यहाँ एकतालीस मील की यात्रा करते हुए नहीं आया हूँ। इधर तीन सप्ताह हो गये, पर तुमने एक भी लेख नहीं भेजा। लाओ जल्दी से पहले कोई लेख, कहानी, कविता अल्लम-गल्लम जो कुछ भी हो, और तब जलपान या और कुछ होगा।'

लाला खराबदास इसी प्रकार बिना पूर्व सूचना के आ धमकते थे और मुझे विवश होकर 'मूड' में आना पड़ता था और कुछ न कुछ लिखकर उन्हें अर्पित करना ही पड़ता था। यह सम्भव है

कि कांस्टेबुल बिना लैम्प की बाइसिकिल चलानेवाले को बिना चालान किये ही छोड़ दे, यह भी सम्भव है कि पार्सल एक्सप्रेस समय पर स्टेशन पर पहुँचे, यह भी सम्भव है कि जिन्ना साहब गाँधीजी को अपने यहाँ निमन्त्रित करें और यह भी सम्भव है कि मेरी श्रीमतीजी मुझे अपने छोटे भाई के मुँह पर 'मूर्ख' या 'निखट्टू' ऐसे शब्दों से सम्बोधित करना बन्द कर दें, पर यह कदापि सम्भव नहीं कि लाला खराबदास मेरे यहाँ से बिना कोई लेख, कहानी या कविता लिए हुए टस से मस हों।

और यही हुआ भी! लाला साहब ने जलपान तभी किया, जब उन्हें एक लेख मिल गया। मुझ पर वे बहुत बिगड़े। बोले—अजी अब तुम अपने को बहुत बड़ा आदमी समझने लगे हो। पत्र का उत्तर तक नहीं देते। कई बार तुमने बहाना किया था कि तुम्हें पत्र मिले नहीं। इसीलिए इस बार मैंने तुम्हें बैरंग पत्र भेजा था। तुम मेरे अक्षर तो अवश्य ही पहचानते हो। पर तुमने पत्र लेने से इन्कार किया। फल यह हुआ कि 'डेड लेटर आफिस' होकर वह फिर मेरे पास बैतालपचीसी के बैताल की तरह आ पहुँचा।'

'अरे यार चुप भी रहो। क्यों बके जा रहे हो। मैं लेख का 'मैटर' सोच रहा हूँ और तुम अपनी जोते जा रहे हो'—मैंने उकता कर, और उनके पत्र लौटाने के अपराध से जान बचाने के लिए कहा।

'वही तो, इस बार मुझे विशेष प्रकार का लेख चाहिए। उसमें कला या 'टेकनिक' की प्रधानता हो। 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त का मैं कायल हूँ। आजकल इसी की जोरों से चर्चा है। टैगोर स्कूल के चित्र आप देखते ही हैं। भले ही उनके अन्दर आपको किसी 'चित्रत्व' का दर्शन न हो, पर आपको यह मानना ही पड़ेगा कि उनमें एक विशिष्ट कला है। हाँ, लेख आप

छोटा ही लिखिएगा, आजकल जैसे डेढ़ डेढ़ कालम के गद्य-गीत निकलते हैं। वही सवा दो कालम रहें या हद से हद पौने तीन। और देखिए भाव कुछ दार्शनिकता का आवरण लिए हुए हो। अक्षर तनिक सुन्दर लिखने का प्रयत्न कीजिएगा।'

लाला खराबदास को भी आजकल 'कला कला के लिए' का रोग लगा हुआ है। अब तक तो बेचारे इस चक्कर में न फँसे थे पर हाल में ही उनके नगर के कुछ युवक कलकत्ता से वापस आये थे और उन्होंने ही उन्हें इस रोग को सौगात में प्रदान किया। हमारे हिन्दीवाले बड़े गुणग्राही हैं। इसी कारण अंग्रेजी या बंगला पत्रों के लेख या कविताओं को तो पचाकर कुछ न कुछ नवीनता के साथ निकाल ही देते हैं, उन भाषाओं के साहित्यों में जो कुछ नवीन भावनाएँ या सिद्धान्त प्रचलित हो जाते हैं उनका भी अपने यहाँ बेधड़क प्रयोग करते हैं।

मुझे लाला जी को भी इन नवीन सिद्धान्तों में फँसा देखकर कुछ दुःख हुआ। अब तक तो ये ऐसे न थे। अपने ढंग से सम्पादन करते थे। इनकी मौलिकता इनकी निजी चीज हुआ करती थी। वे अपनी टिप्पणियों तथा समस्त रचनाओं में मौलिकता ठूँस ठूँस कर भर दिया करते थे, थे क्या अब भी भरते हैं जिस प्रकार लॉरी वाले अपनी इन स्वनामधन्य 'लारी' नामक गाड़ियों में 'सवारी' नामक प्राणियों को भर लेते हैं।

लाला जी की टिप्पणियों का कोई नमूना देखिएगा! क्या बात है तबीयत खुश हो जावेगी। एक बार इनकी टिप्पणी से सिनेमा-जगत् में काफी चहलपहल या हलचल मच गई थी। कुछ पत्रों में उस वर्ष यह सवाद प्रकाशित हुआ था कि प्रसिद्ध सिनेमा अभिनेत्री मिस ग्रेटागार्बो भारतवर्ष के अन्दर पधारने-वाली हैं। बस, इस संवाद पर उन पत्रों में सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी निकलीं जिसमें उनका स्वागत किया गया था तथा सिनेमा

की व्यापकता और उसके महत्त्व की चर्चा की गई थी ! पर हमारे मौलिक सम्पादक लाला खराबदास ने अपने 'पटवारी' में जो टिप्पणी दी थी उसका सारांश यह था—अभिनेत्री ग्रेटागार्बो के भारत आने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, मुझे उनके 'मिस' विशेषण पर आपत्ति है। कौन नहीं जानता कि सिनेमा-जगत् की अधिकांश अभिनेत्रियाँ चाहे वे विलायत की हों या भारत की, 'मिस' नही रहने पातीं, वे डाइरेक्टर महोदयों पर ही विशेष कृपा करती रहती हैं और कई के अन्य दर्शक आदि भी कृपापात्र होने के लिए तपस्या किया करते हैं। अनेक अभिनेत्रियाँ विवाहित भी होती हैं, अनेक विधवाएँ हो गई रहती हैं; उनके वैधव्य के कई संस्करण हो गये रहते हैं। सनातनधर्मी अपने अपने शास्त्रों का नाम लेकर दुहाई देते हैं कि जो स्त्री अपने पति के प्रतिकूल आचरण करेगी या पर-पति से प्रेम करेगी तो सात बार अर्थात् सप्त जन्म लेकर विधवा होगी। पर भारत की कुछ विशेष दिव्य-दृष्टि-सम्पन्न महिलाएं, जो पुनर्जन्म लेना नही चाहतीं, इसी जन्म मे सात बार विधवा हो लेती हैं। अस्तु, मैं यह जानता हूँ कि मिस ग्रेटागार्बो 'मिस' नही हैं, वे विवाहिता हैं। मै उनके पति का नाम भी जानता हूँ।'

इस टिप्पणी के छपते ही सिनेमावालों ने इनके पास कई पत्र भेजे। सिनेमा के कार्यकर्ताओं और कार्यकर्त्रियों पर जो कटाक्ष किये गये थे, उसके कारण तो इन्हें गालियाँ दी ही गई थी, इनसे यह पूछा गया था कि ग्रेटागार्बो के विवाहित होने का समाचार इन्हे कहाँ से मिला और ग्रेटागार्बो के पति का नाम क्या है ? लालाजी ने पटवारी के अगले अंक में यों खेद प्रकाशित किया—हमे खेद है कि गत अक में प्रकाशित ग्रेटागार्बो की विवाहवाली बात भ्रममूलक है। हमने सोचा था कि सिनेमा-क्षेत्र में रहकर विवाहित जीवन के आनन्द को उठाने की चेष्टा

न करना बड़ी भारी बात है या एक तपस्या है। पर हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि मिस ग्रेटागार्बो अब तक अपने कौमार व्रत को ही निभा रही हैं। उनके पास विवाह के कई प्रस्ताव आये थे, पर उन्होंने एक को भी स्वीकार नहीं किया। रह गई उनके कल्पित पति के नाम जानने की बात, तो उसके सम्बन्ध में इतनी उछल-कूद मचाने की क्या आवश्यकता है! हमने यह अनुमान किया था कि उनके पति का नाम मिस्टर ग्रेटागार होगा और जैसे सोमारू की बीबी सोमारू बो या पण्डित मॅहगू तिवारी की धर्मपत्नी मॅहगू बो कहलाती हैं वैसे ही मिस्टर ग्रेटागार की पत्नी ग्रेटागार बो कहलाती होंगी।'

और सब लोग चाहे लाला खराबदास की इस मौलिकता पर रुष्ट हुए हों। पर मैंने उन्हें बधाई दी थी। उन्होंने एक बार यह भी लिखा था कि हिटलर या तो जनखा है या उसे व्याकरण नहीं आता। अपने नाम के आगे 'हर' शब्द लगाता है। अपने को हिज हाईनेस की तरह 'हिज हिटलर नहीं लिखता।

मैंने अपने लेख लिखने का काम चालू रक्खा, यद्यपि कान लालाजी की ही ओर थे। उनके लिए दुबारा चाय मॅगवा चुका था। मेरा लेख प्रायः आधा समाप्त हो चला था और लालाजी की चाय भी आधी समाप्त हो चली थी, कारण वे चाय भी पीते जाते थे, बातें भी करते जाते थे, मेरी रचना को पढ़ते भी जाते थे और मुझे बीच बीच मे कुछ सदुपदेश भी कर दिया करते थे। मैं यह पंक्ति लिख रहा था—जिस प्रकार सतियों में सीता, ग्रन्थों में गीता, पशुओं में चीता और फलों में पपीता सर्वश्रेष्ठ हैं, जिस भाँति भोजन में भात, फिल्मों में प्रभात, बर्तनों में परात, यात्राओं में बारात, ऋतुओं में बसन्त तथा मन्त्रियों में सिकन्दर हयात का नाम उजागर है उसी प्रकार ·····।'

लालाजी को ये उदाहरण शायद कुछ अच्छे मालूम पड़े या

न जाने क्या बात हुई कि उन्होंने भीषण अट्टहास किया और जोर से मेज पर हाथ पटका जिसका फल यह हुआ कि उनकी चाय उनके प्याले से निकल कर मेरे लेख के पन्नों पर आ गिरी और मेरी दावात की स्याही उनकी तश्तरी के पकोड़ियों को अपने रंग में रंगने का उद्योग करने लगी। मैंने सोचा अब मेरी स्याही ने उनके चाय का साथ दिया है तब मैं भी क्यों पीछे रहूँ। मैंने भी कुर्सी पर फुटबाल की भाँति उछलते हुए जो हँसना प्रारम्भ किया तो वह उछला और हँसा कि क्या बात।

अब मेरी नींद खुल गई थी। उछल-कूद में मैं चारपाई के नीचे आ गया था। नाक में ऐसी चोट लगी थी कि सिर भन्ना रहा था! श्रीमती चारपाई पर से ही झाँकती हुई कह रही थीं। बात क्या है जो तुम नींद में इतना हँस रहे थे। तुम्हारी यह अजीब प्रकृति है कि नींद में या तो रोना ही प्रारम्भ कर देते हो या अट्टहास ही करना। अच्छा सपना देखते हो। जब तक मैं तुम्हें जगाकर पूछूँ कि यह इतना कौन सा प्रसन्नतासूचक स्वप्न है जो तुम्हारी हँसी का वेग नहीं कम हो रहा है, तब तक तुम धड़ाम से पृथ्वी पर जा रहे।

भगवान् सूर्य आकाश में निकल रहे थे, गली में चायवाला चिल्ला रहा था, श्रीमतीजी कमरे में सामने मेज पर बैठी मुझे बनाने का विफल उद्योग कर रही थीं और मैं लेटा-लेटा ही अपनी नाक सहला रहा था।

खब्बू गुरु

पंडित दाताराम तिवारी मँगनी की एलारम घड़ी को हाथ में लिए हुए कुशासन पर बैठे जिस बात की घण्टों से प्रतीक्षा कर रहे थे, वह बात अन्त में अब पाँच बजकर २८ मिनट और १७ सेकेंड पर पूरी हुई। आज तक वे केवल पिता थे, आज से वे 'पितामह' पद के अधिकारी हुए। उन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था, फलित और गणित दोनों का। मूक प्रश्न भी विचारा करते थे। इतना तो उन्हें विश्वास था कि उनके वंश में इस बार लड़की जन्म नहीं ले सकती। इसलिए जब उनकी बहन ने आकर कहा कि 'पोता मुबारक', तो उन्हें डबल खुशी हुई। एक तो पौत्र उत्पन्न होनेकी, दूसरी अपनी भविष्यवाणी की सफलता की।

पंडितजी तुरन्त स्लेट-पेंसिल लेकर गणना करने बैठ गये। नक्षत्र, चरण, राशि, लग्न आदि का पूर्ण विचार किया। लड़का बड़ा भाग्यवान होगा। पर पढ़ेगा नहीं। हाँ चतुर और बुद्धिमान अवश्य होगा। मामा की राशि पर है। नहीं नहीं मामा को राशि पर नहीं है। बहुत साफ बचा गया है। हाँ राशि का नाम क्या हुआ। चू च 'चोला नहीं नहीं, श्रवण है न! तब हुआ खी खू खे खा। क्या नाम रखूँ खेलावन। नहीं-नहीं खेलावन तो उस दिन लटकन पासी के लड़के का नाम रख चुका हूँ। मेरे पोते का नाम वह कैसे हो सकता है। खी खू खे खा, एँ ख ख···ख हाँ हाँ खब्बू खब्बू! बस बस यही 'खब्बू' नाम ठीक है। पिंगल से भी मगण है। पैसा मिलना चाहिए।' यही तनिक कसर है कि विशेष पढ़ेगा नहीं, विद्या अधिक नहीं है, पर भाग्यवान होगा इसमे कोई सन्देह नही। रुपये तो बरसा करेंगे ?

सामने ही बैठे हुए तिवारीजी के बहनोई पंडित छटंकूराम

दूबे अफीम के नशे में झूम रहे थे। 'बरखा करेंगे' सुनते ही वे चौंक पड़े और बोले—हाँ हाँ दाता, अबको साल बरखा-बूँदी न होने से हमारा तो बड़ा नुकसान हुआ। जरा देखो इधर बरखा का कौनो जोग योग है कि नहीं?

तिवारीजी को बहिन कुछ नाराज होते हुए बोलीं—इन्हें अफीम की पिनक में दूर की ही सूझती है। लगे बरखा और हरियाली देखने। हाँ तो, दाता ई तो बताओ कि लड़का न पढ़ेगा, न सही, रुपया तो खूब कमावेगा न!

हाँ बहिन, वही तो कह रहा था कि रुपये कमाने में कोई कसर नहीं। जितना हम लोग पढ़-लिखकर तीन पुश्त मिलाकर न कमा सके होंगे। उतना यह अकेले बिना पढ़े-लिखे ही कमा लेगा इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

× × ×

आज इस बात को बीते ३० वर्ष बीत चुके हैं। न अब दाताराम तिवारी हैं और न उनके बहिन बहनोई। खब्बू के बाप भी स्वर्ग सिधार चुके हैं। खब्बू अब सिर्फ खब्बू नहीं वरन् खब्बू गुरु हो चुके हैं। उनके स्वय दो लड़के और तीन लड़कियाँ भी हो चुकी हैं। खब्बूजी को ससुराल की सारी सम्पत्ति मिल गई है। उन्होंने तीन बार एण्ट्रेन्स की परीक्षा दी थी। पहली बार अंग्रेजी में फेल हुए। दूसरी बार अंग्रेजी में तो पास हो गये, पर हिसाब का पर्चा बिगड़ गया। तीसरी बार फिर साहस किया तो भूगोल में लुढ़क रहे।

इसके पश्चात् खब्बूजी ने सोचा कि इम्तहान देना व्यर्थ है। इसलिये उन्होंने एक सेवा संघ स्थापित किया और इसके मन्त्री बन बैठे। एक अनाथालय भी खोल दिया? इन दोनों संस्थाओं से इन्हें दो-तीन सौ रुपयों की आमदनी प्रति मास हो जाया करती थी। पर ज्यों-ज्यों परिवार बढ़ता गया त्यों-त्यों व्यय भी

बढ़ता ही गया। अन्त में विवश होकर एक विधवाश्रम खोला। अब इसकी बदौलत इनकी आमदनी चकाचक है। बँगला भी बन गया है। ताँगा भी है। सेवासंघ और अनाथालय के सारे चपरासी भी घर पर मुफ्त में काम-धन्धा करते हैं।

आप पूछ सकते हैं कि इनका नाम खब्बू गुरू कैसे पड़ा? हाँ, यह तो मैं आपको बतलाना ही भूल गया था। इसका एक बहुत छोटा सा कारण है। खब्बूजी ने एक मारवाड़ी को चेला मूड़ा। मारवाड़ी केवल पति-पत्नी ही थे। उन्हें कोई सन्तान न थी। अब खब्बूजी का उनके यहाँ कथा बाँचने के नाम पर प्रवेश हुआ तो उनके पूजा-पाठ आदि की बदौलत उस दम्पति को पुत्र-लाभ भी हुआ। मारवाड़िन ने खब्बूजी को १०००) रु० दक्षिणा दी और सारे मारवाड़ी उन्हें 'गुरू' के नाम से पुकारने लगे।

खब्बूजी कुछ समय तक एक बैंक के डाइरेक्टर भी थे। पर 'खब्बू' ही तो थे। सो इनकी कृपा से बैंक फेल हो गया। सैकड़ों परिवार के रुपये डूब गये और कितने ही लोग अनाथ हो गये। पर खब्बूजी के कान में जूँ तक न रेंगी। वे फिर भी उसी भाव और अदा के साथ नगर और नगर के बाहर घूमा करते हैं। जनता यद्यपि इनसे अब अधिक सावधान रहा करती है, फिर भी खब्बूजी की आय में कोई कमी नहीं हुई है। लोगों का कहना है कि जब तक खब्बूजी जीवित रहेंगे, भारतवर्ष में विधवाएँ होती रहेंगी, और पंजाब प्रान्त सहीसलामत रहेगा; तब तक खब्बूजी को रुपयों का अभाव नहीं हो सकता।

पर इधर दो-चार महीनों से खब्बूजी के चेहरे पर कुछ उदासी दिखाई पड़ती है। काम तो उनका चौचकल्प में चल रहा है। उनके एक मित्र से मुझे पता चला है कि एक रात उन्होंने सपने में अपने दादा ज्योतिषी दाताराम तिवारी को देखा था। वे इन पर बहुत क्रुद्ध हो रहे थे और कह रहे थे—क्यों रे!

मैंने तुझे इसीलिए पाल-पोसकर बड़ा किया था, कि तू विधवाओं का व्यापार करके पाप का पैसा कमावे! मेरा और अपने बाप का साल में एक बार श्राद्ध करके तू समझता है कि तूने हमपर बड़ा एहसान लाद दिया है। अरे कुछ परलोक का भी डर कर। तेरे कारण हम लोगों की पितृलोक में बडी दुर्गति और निन्दा हो रही है। सभी पितृगण हमारा मजाक उड़ाते हैं। मैंने ही तेरी राशि का नाम 'खब्बू' रक्खा था। सो तू तो सचमुच अद्भुत खब्बू निकला। अरे बेटा! ऐसा पाप न कर। नहीं तो तुझे नर्क में भी जगह न मिलेगी। यहाँ खूब ताँगे पर घूम ले, पर वहाँ पर तुझे चढ़ने के लिए गधा तक तो मिलेगा नहीं! यदि तूने अब भी अपने को न सुधारा तो हम सब पितर लोग तेरे वंश का ही लोप कर देंगे।

दस-पाँच दिन तक तो खब्बू गुरू इस सपने के कारण बड़े भयभीत रहे और इनका रोजगार भी कुछ मन्दा था। पर एक दिन उन्होंने इस स्वप्न को मानसिक कमजोरी समझा और फिर वही बेढंगी रफ्तार शुरू की। पर तीन-चार ही दिन बाद उनके दोनों लड़के एकाएक हैजे से जाते रहे। अब खब्बूजी की आँखें खुलीं।

इधर उन्होंने विधवाश्रम से स्तीफा दे दिया है। और कुछ कुछ दान-पुण्य भी करने लगे हैं। पर सेवासंघ और अनाथालय का काम पूर्ववत् ही चलाये चल रहे हैं।
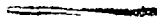
खरदुखना की लड़ाई

आप कभी कचहरी गये हैं। मेरा मतलब यह है कि आपने अपने चर्मचक्षुओं से अदालत की कोई कार्रवाई देखी है। भले ही आप पर कभी मार-पीट का मुकदमा न चला हो, यद्यपि आपका स्वभाव ऐसा है कि आपको एकदम वसिष्ठ भी नहीं कहा जा सकता, पर आपने मार-पीट, चोरी-ठगी, जालसाजी, औरत भगाने, नकली सिक्के वनाने आदि जुर्मों के अभियुक्तों के नाम अवश्य सुने होंगे। अखबारों में उन सबकी पवित्र चर्चा अवश्य पढ़ी होगी। और अखबार से बढ़कर आजकल दूसरा प्रचारक कौन है। अखबार की बदौलत विलसिया मरकर भी अमर है।

किंतु 'लीडर' और 'आज' मे मुकदमों के वर्णन पढ़ने से कचहरी के वास्तविक मजे कहीं मिल सकते हैं। किताब के अन्दर गुलाब का चित्र देखकर ही आपको सन्तोष हो सकता है। सन्तोष ता तब हो सकता है जब आप किसी सुन्दर उद्यान में बैठे हों। सामने एक टेबुल हो, टेबुलपर गुलदस्तों में चैती गुलाब मह-मह कर रहे हों, ग्लास में वर्फ मिला हुआ गुलाब-जामुन हो! क्या मैं झूठ कह रहा हूँ?

चाचा चाणक्य ने चतुरता सीखने के चार स्थान बताए हैं। धार्मिक लोगों के लिए जैसे चार धाम बनाये हैं—रामेश्वर, पुरी, द्वारका और बदरिकाश्रम। उसी प्रकार लौकिक सुख चाहने-वाले और अपनी बुद्धि तथा चतुराई में चार चाँद लगाने की इच्छा रखनेवाले महानुभावों के लिए 'देशाटनं, पण्डित मित्रता च वारागनां राजसभाप्रवेशः' ये चार स्थान या उपाय निर्धारित हैं।

देशाटन से लाभ अवश्य है, पर आजकल रेलें कितनी कम कर दी गई हैं। काहे से देशाटन कीजिएगा! फिर रेलगाड़ी में आप एक जगह मान लीजिए जैसे मोगलसराय में चढ़े और

हबड़ा जाकर उतर गये। जगह मिल गई तो टाँग फैलाकर १८ घण्टे सोये और नहीं तो मोमफली खरीदकर खाते रहे। कौन सी ज्ञान-वृद्धि हुई।

पण्डित-मित्रता का कहना ही क्या है। इससे ज्ञान-विकास न होगा तो क्या मूर्ख-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष बनने से होगा? पर आपको पहले से यह मालूम कैसे कि अमुक व्यक्ति पण्डित ही है, मूर्ख नहीं। उसे कोई सींग-पूँछ तो होती नहीं। कोई साइन बोर्ड तो उसने टाँग नहीं रक्खा है। हा, नाम के पहले लगे हुए पण्डित शब्द पर यदि आप विश्वास करते हैं तो यह आपकी मूर्खता का ज्वलन्त प्रमाण है।

आप कह सकते हैं कि नहीं भाई साहब, पण्डित चिथरू प्रसाद या पण्डित लम्पटचन्द सरीखे घाटिया और निरक्षर व्यक्ति को मैं पडित नहीं मानता। पंडित वह है जो शिक्षित हो।

अच्छा, तो शिक्षा से आपका तात्पर्य! कोई डिग्री हो, यही एम-ए, आलिम, कामिल, व्याकरणाचार्य, दर्शन-केशरी आदि आदि। पर क्या ये सब डिग्रीधारी पण्डित ही होते हैं। इनके कामों में आपको मूर्खता-की गन्ध नहीं आती। 'सद्सद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा चेत्यभिधीयते।' जिसमें सद् और असद् में भेद कर सकने की 'पण्डा' नामक बुद्धि हो वही तो पण्डित हुआ न! इस प्रकार आप कहाँ तक परिश्रम कीजिएगा कि किसमे यह 'पंडा' है और किसमे नही! अतः यह दूसरा आदमी योंही रहा!

अब रही वारांगना। भला इसके यहाँ जाने में आपको कौन सा परिश्रम या कष्ट है। पर ऐसा करिएगा मत। नही ज्ञानवृद्धि के साथ कुछ और भी वृद्धि हो जायगी तो जन्म भर रोइएगा। वहाँ यह अवश्य पता चलता है कि श्रीमती अमुकी वारांगनाजी ने श्रीमान् अमुक आवाराजी को इस प्रकार चपरगट्टू बनाया, अब आप अपने को बचाइए, पर यह होनेका नहीं। काजलकी

कोठरी में कैसोहू सयानो जाय, काजर की एक लीक लागिहै पै लागिहै। आप चाहे अपने सुधार के ख्याल से वहाँ जावें, चाहे उन्हीं की दशा के सुधार और उद्धार के नाम पर, चाहे उनके लिए पत्रिका या विशेषांक निकालें, पर आप बच नहीं सकते। आप लाख कसम खावें, मैं विश्वास करने से रहा।

अब रहा राजसभा-प्रवेश। यहाँ राजसभा से लार्ड कर्जन के दिल्ली-दरबार से तात्पर्य नहीं है। इसे आजकल की भाषा में 'कचहरी' कहते हैं।

एक बार सनकादिकों ने देवर्षि नारद से पूछा कि महाराज कलियुग में जब समस्त प्राणी आलसी, निरुद्यमी, कृपण, कायर और मूर्ख हो जावेंगे तब उन्हें कर्मनिष्ठ, उद्यमशील, उदार और विद्वान् बनाने के लिए कोई उपाय है या नहीं। कोई तीर्थ, जप या अनुष्ठान हो तो हमसे कहिए।

महर्षि नारद ने क्षणभर ध्यानमग्न होकर आँखें खोलीं और बोलते भये—अहो, सनकादिको तुमने बहुत ठीक पूछा। कलियुग में 'कचहरी' तीर्थ सब तीर्थों से उत्तम होगा। वहाँ जाने से सब पाप और दुःख दूर हो जायँगे। और प्राणियों को फिर नर्क-यातना नहीं भोगनी पड़ेगी। कचहरी का सेवन करने से बड़े-बड़े कंजूस भी त्यागी और दानी होंगे। कितने ही कायर वीर-पुङ्गव बनेंगे तथा कितने ही लोक-व्यवहार-शून्य लोग नीति-पारंगत हो जायँगे। अहो! वह कितना सुन्दर समय होगा जब लोग भोजन किये बिना या फलाहार करके लारी नामक विमान में बैठकर कचहरी तीर्थ को प्रस्थान करेंगे। ऐसे लोगों को एक अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। किन्तु जो लोग सतुवा बाँध-बाँधकर पैदल ही इस तीर्थ की यात्रा करेंगे उन्हें एक सहस्र चान्द्रायण-व्रत का फल प्राप्त होगा।

नारदजीने सनकादिकों को इसके बाद कचहरी तीर्थ के बारे

में विस्तार से बतलाया कि वहाँ कैसे जाना चाहिए। क्या करना चाहिए, किसको-किसकी पूजा करनी चाहिए, क्या चढ़ाना चाहिए। यह सब बहुत लम्बा इतिहास है। जिसे पढ़ना हो वह महा कलियुगपुराण के अद्भुत खण्ड के तैंतीसवे सर्ग मे पढ़ लेवे। मै तो इतना ही कहूँगा कि कचहरी मे देशाटन, पण्डित-मित्रता और 'वारांगना सम्बन्धी तीनों ज्ञानार्जन के साधन मिले हुए हैं। देशविदेश के डिप्टी, मुंसिफ, अर्दली, दारोगा दृष्टिगोचर होते हैं। पग्गड़धारी पण्डित, जटाधारी जोगी, साफाधारी सेठ, लँगोटधारी लम्पट, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, डाक्टर, बीमा एजेण्ट, प्रोफेसर, गुण्डे, पण्डे, रण्डी, भडुए, दलाल, मोची, सभी आपको एक स्थान पर मिल जायँगे। फिर कहिए इससे अधिक अच्छा स्थान ज्ञानप्राप्ति का और क्या हो सकता है।

उन दिनों मैं बी० ए० में पढ़ रहा था सन् २३ की बात है। चाचाजी की इच्छा थी कि मैं इसके बाद वकील बनूँ। वे मुझे वकालत पढ़ाकर, फिर मुंसिफी की भी परीक्षा दिलवानेवाले थे। पर मेरी किस्मत में तो कुछ और लिखा था। फिर भी बी० ए० में पढ़ते समय ही मैने सोचा कभी-कभी कचहरी हो आया करूँ और वहाँ के-रग ढग से परिचित होता रहूँ।

एक दिन मै कचहरी गया हुआ था। सिटी मैजिस्ट्रेट के इजलास मे फौजदारी का मुकदमा चल रहा था। चेतगज की नक्कटैया के दिन वहाँ दो दलों में मारपीट हो गई थी। उसी के गवाह गुजर रहे थे। सिटी मैजिस्ट्रेट यूरोपियन थे। हाल ही मे I. C. S करके इंगलैण्ड से आये थे। अवस्था थोड़ी ही थी। यही २८, ३० के लगभग। पर चेहरा बड़ा रोबदार था। मुद्दई-मुद्दालेह, पेशकार, अर्दली, वकील और मुवक्किलों की अपार भीड़ मे वे बड़े ही सुशोभित हो रहे थे जैसे शुक्राचार्य तथा अन्य पुरोहितों के बीच में दैत्यराज बलि विराजमान हो। वकील लोग

जिरह कर रहे थे। एक पण्डितजी, जिनका नाम शायद पण्डित हुरपेटन शास्त्री था, गवाहों के कटघरे में आये। सबकी दृष्टि पण्डितजी की गौरवर्ण, विशाल पगड़ी, चन्दन चर्चित ललाट और बनारसी सिल्क के दुपट्टे की ओर आकर्षित हुई। मैजिस्ट्रेट भी उन्हें देखकर कुछ प्रभावित हुआ-सा प्रतीत होने लगा।

लाला हुरदगलाल मुख्तार ने जिरह शुरू की। 'पण्डितजी आपका शुभ नाम ?

''जी, मेरा नाम पण्डित हुरपेटन शास्त्री है।

''आप कहाँ के शास्त्री हैं ?'

''कहाँ के शास्त्री हैं ? इससे आपको तात्पर्य ? आप क्या मुझे कोई नौकरी देंगे ! मैं शास्त्री हूँ। बस इतना पर्याप्त है।

''नही, नहीं, मेरे पूछने का मतलब यह था कि आपने कहाँ से इम्तहान पास किया है और किस चीज मे ?'

''महाशय मैंने वाराणसीय संस्कृत कालेज से नव्य व्याकरण में शास्त्री उपाधि प्राप्त की है।

मैजिस्ट्रेट ने टोका—यह नव्यव्याकरण क्या है।

माई लार्ड ! यह Grammar है। संस्कृत में ग्रामर को नव्य व्याकरण कहते हैं।—वकील ने कहा।

दूसरे वकील जो कुछ संस्कृत भी जानते थे बोले— माई लार्ड यह ग्रामर का एक 'ब्रांच' है। नव्य मीन्स 'न्यू' होता है।

Oh I see, संस्कृत ग्रामर में ओल्ड और न्यू' ये दो पार्ट हैं।' यह कहकर मैजिस्ट्रेट सिर हिलाने लगा।

अच्छा पंडितजी आपके बापका नाम?और वे क्या करते थे?

'हे साहब देखिए, शिष्ट भाषा का व्यवहार कीजिए। बाप-साप मत कहिए, पिताजी कहिए। समझे न ? वे कुछ नही करते थे। केवल दोनों समय भाँग छाना करते थे। पंडितजो ने रोष-पूर्ण होकर कहा।

वेल What is this भाँग ?

'हुजूर भाँग is a kind of intoxicant in form of green leaves

"Oh I see ! कहकर मैजिस्ट्रेट साहब मुस्कराये ।

'तो पंडितजी आप कभी मारपीट करते हुए पकड़े गये थे या आप पर कभी कोई मुकदमा चला था ?

'आप ब्राह्मण का अपमान करते हैं ?—पंडितजी ने चिल्लाकर कहा—मैं क्यों मारपीट करने लगा ? मुझ पर अभियोग क्यो लगाया जा सकता है ? मैं क्या कोई गुण्डा हूँ या चोर डाकू ? देखिए साहब, न्यायालय में इस प्रकार बुलाकर ब्राह्मण का अपमान करेंगे तो आपको नर्क में कल्पभर निवास करना पडेगा ।

मुख्तार साहब तो पण्डितजी को खिझाना चाहते ही थे। उन्होंने फिर पूछा—आप भी तो भाँग छानते हैं न ?

'क्यों नहीं । दो गण्डे को पत्ती छानता हूँ । दोनों समय ।

मुख्तार तो यही चाहते थे । उन्होंने मैजिस्ट्रेट से कहा—हुजूर this man is intoxicated, his words are not to be relied upon He is a usual drinker. फिर पण्डितजी से कहा—महाराज आपसे अब नहीं पूछना है, आप जाइए।

इसके बाद एक बुड्ढी कहारिन पेश की गई । वह पहले-पहल कचहरी आई थी । जब से उसके नाम सम्मन गया था वह रात भर जागकर देवताओं के नाम मनौती मानती रहती थी । किस साइत में वह नकटैया देखने गई थी । वह उस समय वहाँ उपस्थित थी जब कि मारपीट हो रही थी । भागते-भागते उसके सिर मे भी चोट आ गई थी । जब पुलिसवाले उसे कचहरी में लिवा गये तो उसने वहाँ जाते ही रोना शुरू किया । अंग्रेज मैजिस्ट्रेट तथा इतने वकीलों को देखकर उसने और चिल्लाना प्रारम्भ किया । वकील ने उसे चुप कराते हुए कहा—अरे रो मत बूढ़ा ।

सिर्फ यह बता कि तूने वहाँ मारपीट करते इन आदमियों में से किसी को देखा था। इनमें से किसी को पहिचानती है। तुझे किसकी लाठी से चोट लगी ?

अरे मोर बचवा ! हम का जानी कौन सरबौला मोके मरलेस मोरे मुँहवा में आग लगै। का करै मैं नकटैया देखे गइलौं।— और यह कहकर वह फुक्का फारकर रोने लगी। मैजिस्ट्रेट बड़े चकराये। वे बोले—आप लोग चुप रहिए। मै खुद पूछना माँगटा हूँ। और उन्होंने बुढ़िया से पूछना प्रारम्भ किया—बोल बुड्ढा। हम छटा है तुम वहाँ क्यों गया था ? और तुमको किसने मारा ?

'अरे बबुआ लाट साहब। उहै दहिजरा क नाती सरबौला त मरलेस जवन इहाँ नहिनी देखात।

वेल ! मुहर्रिर नोट करो। इस 'दहिजरा का नाटी सरबौला' ने मारा। नोट करो। देखो ! कैसा फौरन बाट बोला ?

वेल बूढ़ा टो डहिजरा का नाटी और सरबौला को टुम पहिचान सकटा है। उसका हुलिया क्या है। वह डहिजरा का नाटी इन आडमियों में होने सकटा है ?

वकीलों ने अपनी हँसी रोककर कहा—हुजूर डहिजरा का-नाटी कोई खास आदमी नहीं है।

'क्यों नहीं है, आप लोग झूठ बोलटा है। बूढ़ा कह रहा है कि उसे डहिजरा का नाटी और सरबौला ने मिलकर मारा। क्यों बूढ़ा तुम्हें उसी डहिजरा का नाटी सरबौला ने मारा ठा न ?

हाँ सरकार, आप नोके रहैं, दुधन नहायँ पूतन फलै। और ओनहन के हाथे में कीस पडै। ऊ मुँह फुकौना हमें मारके ऐसन भागल कि ओकर पतै नं चलल कि केहर से आयल और केहर गयल।

'ओ I see टीन आडमी था। मुँहफुकौना भी ठा। यह कहकर मैजिस्टेट ने इसे भी नोट कर लिया।

वकील मन ही मन हँस रहे थे। पर साहब बहुत बिगड़ा हुआ था, तीन व्यक्तियों ने एक बुड्ढी को मारा। यह हिन्दुस्तान कैसा देश है। विदेशियों को तो यहाँवाले सिर झुकाते है, पर आपस में लड़ते हैं। औरतों की कोई इज्जत नहीं। तीन-तीन आदमियों ने मिलकर एक 'ओल्ड वोमन' को मारा। इसके लिए उनके नाम सम्मन निकाल कर उन्हें बुलाना होगा और उन्हें ताजीरात हिन्दी की दफा २०७ से कड़ी से कड़ी सजा देनी होगी।

वेल बुड्ढा औरट। तुम देखेगा कि वे तीनों कड़ी सजा पाते हैं। पर टुम यह टो बलटा कि टुम वहाँ क्यों गया था? जो यह सब लड़ाई देखा?—मेजिस्ट्रेट ने पूछा?

अरे। मोर बबुवा मोर पतोहिया कहलेस......

"वेल पटोहिया क्या है वकील?—मैजिस्ट्रेट ने बीच में ही रोककर मुख्तार से पूछा।

हुजूर। पतोहिया is daughter in law.

Well पटोहिया is daughter in law कहकर मेजिस्ट्रेट ने नोट किया।

'हाँ फिर बुड्ढा पटोहिया ने क्या किया?'

'ऊहे लियाय गइल कि खरदुखना क लड़ाई देख आवल जाय। ओ दिनवा खरदुखना क लड़ाई होए के रहल।

'बश बश। एक मुजरिम का नाम और मिला। what Can these pleader do—I have just found out few names' मैजिस्ट्रेट मन में खुश होकर सोचने लगा। फिर बोला—टो खरदुखना की लड़ाई थी। पेशकार नोट करो खरदुखना के नाम भी सम्मन भेजना होगा। अच्छा बुड्ढा औरट टुम जाने सकता है। फिर टुम्हें एक वार खरदुखना वगैरह को पहचानने आना होगा!

वकीलों ने लाख कहा कि खरदुखना रामायण का एक पात्र

था। और दहिजरा का नाटी वग़ैरह गाली है। पर मैजिस्ट्रेट ने नहीं माना। चाय पीने क्लब में जानेपर, वहाँ उन्होंने अपने साथी यूरोपियन लोगों से इसके बारे में पूछा, पर वे भी ठीक ठीक न बतला सके।

किन्तु मुझे बाद में पता लगा कि एक रोज उनके बँगले में जो मालिन थी उसने जब अपने पोते को सरापते हुए कहा—मर दहिजरा क नाती। सरबौला मुँह फुँकौना, तब मैजिस्ट्रेट की समझ में सारी बातें आ गईं।

फैसले के दिन मैं इच्छा रहते हुए भी कचहरी नहीं जा सका था। इसलिए क्या फैसला हुआ, यह नहीं कह सकता। आपको उत्सुकता हो तो स्वयं कचहरी जाकर किसी पुराने वकील से पूछ लीजिए।

'औरत'

पण्डित विलासीप्रसाद मिश्र एम० ए० 'साहित्यरत्न' जुबिली कालेज, मुजफ्फरनगर में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। एफ० ए० और नवीं दसवीं कक्षा को पढ़ाकर महीने मे डेढ़ सौ लेकर घर चले आते थे। घर में वे, उनकी पत्नी, तीन पुत्र, एक कन्या, एक साला, एक गऊ और एक कहार का लड़का, जो बर्तन भी माँजता था और गाय के सानी-पानी की व्यवस्था करता है, ये ही ६ प्राणी हैं। मिश्र जी को कविता करने का भी शौक है। उपन्यास भी लिखते हैं। इस प्रकार डेढ़ दो सौ की ऊपरी आमदनी भी हो जाती है। वे इतने विद्वान् हैं पर उनके लड़के कुछ पढ़ते-लिखते नहीं। मिश्रजी को बच्चों को पढ़ाने-लिखाने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। कहते हैं—बच्चों के संग माथा-पच्ची करना मेरे लिए असम्भव है। पत्नी कहती हैं—वाह, दूसरों के

बच्चों को तो आप बड़े मजे में पढ़ा लेते हैं, अपने बच्चों को पढ़ना आपको गढ़ाता है। अब तुम इतने छोटे बच्चों को नहीं पढ़ा सकते, तो ऊँचे दर्जे के लड़कों को क्या पढ़ाते होगे ?

मिश्रजी पत्नी से लाख कहते हैं कि वे लड़के अब बच्चे नहीं, बच्चों के बाप हो चुके हैं ! वे सब समझदार हैं और उन्हें पढ़ाने में किचकिच नहीं करनी पड़ती—पर श्रीमतीजी इसे एक-दम मानने को तैयार नहीं होतीं ! वे इसे अपने पति की अपने बच्चों के प्रति उदासीनता ही समझती हैं।

मैं मिश्रजी का पड़ोसी हूँ। मिश्रजी के घर से और मेरे घर से आना-जाना तथा प्रेम-व्यवहार है। उनकी पत्नी मुझसे पर्दा नहीं करतीं। मिश्रजी दूर के सम्बन्ध से मेरे भतीजे भी लगते हैं, इस कारण उनकी पत्नी मुझे चाचाजी कहती हैं।

एक दिन मिश्रजी के सामने ही उनकी पत्नी ने मुझसे कहा—देखते हैं न चाचाजी, सुरेश का १५वाँ वर्ष चल रहा है पर अभी यह चौथे दर्जे में ही पढ़ रहा है। मेरे भानजे की उम्र मुश्किल से १२ की होगी, पर इस साल वह नवें का इम्तहान देनेवाला है। और उसके बाप न कोई प्रोफेसर हैं न लेखक। केवल कपड़े की दूकान करते हैं। और यहाँ लोग प्रोफेसर बनकर बैठ गये हैं, पर उनके लड़कों को ट्यूटर पढ़ाने आते हैं। इनसे यह भी नहीं देखते और पूछते बनता कि वे लड़कों को क्या पढ़ाते हैं और लड़के अपना पाठ याद भी करते हैं या नहीं। जब क्लब और साहित्यगोष्ठी से फुर्सत मिले तब तो !

बात तो ठीक कह रही थी। मुझे भी सुशीला का समर्थन करना पड़ा।

मिश्रजी बोले—चाचाजी, आपको तो इसने अपनी ओर कर लिया पर एक दिन आप ही बैठकर इन बच्चों को पढ़ाइए न। कितना मानसिक परिश्रम पड़ता है। दस मिनट तो ये पढ़ेंगे,

फिर दस मिनट के बाद ये एक दूसरे को चिकोटी काटकर, शिकायत करना और रोना शुरू कर देंगे। कौन फैसला करने बैठे। ये खुद पढ़ी-लिखी हैं। विशारद की परीक्षा पास कर चुकी हैं। इनके पिता ने घरपर ईसाई अध्यापिका रखकर इन्हें इंट्रेंस तक अँग्रेजी भी पढ़ा दी है। कौन कहे कि बेटी सुषमा को ही वे कुछ सीना-पिरोना सिखाती हैं या दो-चार अक्षर अँग्रेजी के बता देती हैं।

बात तो ठीक कह रहे थे। मुझे भी मिश्रजी का समर्थन करना पड़ा।

मेरी सम्मति का मूल्य ये दोनों पति-पत्नी इसी कारण विशेष नहीं मानते थे कि मैं दोनों की ही बातों का समर्थन कर दिया करता था। और दोनों ही की बातों में कुछ-न-कुछ सत्य का अंश अवश्य रहता था।

एक दिन किसी निजी काम से मैं मिश्रजी से मिलने, उनके कालेज में गया। दफ्तर में पता लगा कि वार्षिक परीक्षा हो रही है और मिश्रजी तीसरी कक्षा के विद्यार्थियों का हिन्दी में 'ओरल' (मौखिक) इम्तहान ले रहे हैं। प्रिंसिपल साहेब ने हिन्दी की सर्वोच्च कक्षा के अध्यापक को ही सबसे छोटी कक्षा के छात्रों की परीक्षा लेने को क्यों कहा, यह मेरी समझ में नहीं आया। मैं भी मिश्रजी से मिलने तीसरी कक्षा के कमरे में चला जो कालेज के दूसरे भाग में था।

मिश्रजी डिक्टेशन बोलने जा रहे थे। एक-एक पन्ना कागज हर एक छात्र को मिला था। वे सब उसपर अपना नाम लिखकर कलम हाथमे लिए डिक्टेशन की उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखते ही मिश्रजी ने कहा—आइए तिवारीजी, आखिर आज छोटे बच्चों का मेरा साथ पड़ ही गया। मैंने भी सोचा एक दिन का मामला है, जरा इन सबकी कक्षा में किस ढंग की

पढाई-लिखाई हुई है, देख लूँ। क्योंकि ये ही सब नाइन्थ टेन्थ में आकर मेरे मत्थे पड़ेंगे। यदि इनकी पढ़ाई में कोई त्रुटि हुई तो मैं प्रिंसिपल से कहकर उसमें अभी से कुछ सुधार भी कराता रहूँगा। मैंने सुना है कि नीची कक्षाओंमे अध्यापक लोग विशेष मनोयोग से नहीं पढ़ाते।

मिश्रजी ने मुझे पास ही एक कुर्सीपर बिठाकर डिक्टेशन बोलना प्रारम्भ किया। पहले उन्होंने उन्हें कुछ नियम बतलाए।

'लड़को तुम एक बार खूब मजे में सुन लो। फिर मैं बोलना शुरू करूँगा! मैं खूब धीरे-धीरे बोलूँगा। यदि कोई शब्द छूट जावे तो बीच में बोलना नहीं। मैं डिक्टेशन बोलकर उसे दुहराऊँगा। तुम लोग छूटे हुए शब्द उसी समय लिख लेना।

अच्छा अब सुनो:—

एक जंगल में एक सिंह रहता था। वहाँ के सारे पशु उससे...

एक लड़के ने बीच में ही खड़े होकर कहा—मास्टर साहब देखिए मनोहर ने मेरा सोखना छीन लिया है। मिश्रजी ने डाँटा, चुप रहो। शोर न करो। पहले जो बोल रहा हूँ उसे सुनो।

'सारे पशु उससे भयभीत रहा करते थे। वह प्रतिदिन अनेक पशुओं को मार डाला करता था। एक दिन पशुओं ने मिलकर आपस में राय की और सिंह से जाकर कहा—श्रीमान् आप हममें से प्रतिदिन एक को ही मारा करें। हम स्वय अपने में से किसी एक को आपके यहाँ भेज दिया करेंगे। आपको परिश्रम भी न करना पड़ेगा और हम सब भी कुछ दिन तक जीवन का सुख उठा लेंगे।

अच्छा लिखो—

एक जंगल में एक सिंह रहता...एक लड़का बीचमें ही बोल उठा—मास्टर साहब 'सिंह।' दूसरेने कहा—रहता के बाद क्या बोले मास्टर साहब? मिश्रजीने डाँटा—अरे चुप रहो। दुहराते

समय लिख लेना। 'हाँ सारे पशु—उससे भयभीय—रहा करते थे। वह प्रतिदिन।' तीसरे लड़केने चिल्लाकर कहा—पशु मास्टर साहब ? अस्तु, किसी प्रकार राम राम करते डिक्टेशन का काम समाप्त हुआ। मिश्रजी बहुत धीरे-धीरे बोलते थे। फिर भी दस पन्द्रह लड़के कुछ भी न लिख पाये! इसके अतिरिक्त किसी के पास कलम न थी. तो किसीके कागज पर स्याही फैलती थी, इससे उसने लिखने का कष्ट न किया। डिक्टेशन बोलना समाप्त होतेही एक लड़का बोला, देखिए मुंशीजी, रामूने मेरा सन्तरा ले लिया है।

अब पुस्तक पढ़वाने तथा अन्य शब्दार्थ तथा कथा पूछने की बारी आई। पहले चार लड़के क्रमानुसार आये। मिश्रजी ने कहा—कोई भी पाठ पढ़ो जो तुम्हें अच्छा लगता हो! साहित्य सुमन चौथा भाग शायद उस पुस्तक का नाम था। एक लड़के ने कबीरदास की जीवनी को चुना। तीसरेने 'जयपुर की सैर' और चौथे ने 'लोमड़ी नानी' की भूख से पढ़ा।

मिश्रजीने पूछना प्रारम्भ किया—'अच्छा बताओ, तुमने तानसेन का पाठ पढ़ा है। यह तानसेन कौन था। उसके पाठ में तुमने उसके बारे मे क्या पढ़ा है। जिस लड़के से पूछा गया था, वह मुँह ताकने लगा। बोला, 'मास्टरसाहब यह नहीं मालूम।

अच्छा, तुम बता सकते हो। अशोकचन्द्र तुम बताओ—तानसेन कौन था और वह क्या करता था ?

'जी, तानसेन एक आदमी था'—अशोक ने बड़े गर्वसे कहा ?

'हम बतलावे मास्टर साहब ?' तीसरे लड़के बदरीप्रसादने शीघ्रता से पूछा।

'हाँ बतलाओ। शाबाश। देखो तुम लोग नहीं बता सके। यह लड़का याद किये हुए है।

'तानसेन कबीरदास का लड़का था।' बदरीप्रसाद ने तपाक के साथ कहा।

'बस, तुम्हें कुछ नहीं मालूम। तानसेन कबीरदास का लड़का था? यही तुम्हारी किताब में लिखा है? अच्छा तुम बताओजी चन्द्रिकाप्रसाद।

चन्द्रिकाप्रसाद ने तुरन्त उत्तर दिया—जी, कबीरदास तानसेन का लड़का था।'

मिश्रजी बड़े घबड़ाये। ये बच्चे पुस्तकें पढ़ते हैं, पर उनके अन्दर क्या लिखा है, यह उन्हें पता ही नहीं। सम्भव है अध्यापकों ने इन्हें ठीक तौर से पढ़ाया ही न हो।

कविता सुनाने के लिए कहा गया तो, दो एक के सिवा और सब असफल रहे! शब्दार्थ तथा लिपि की कापी दिखाने के लिए पाँच नम्बर नियत थे। पर दो एक के सिवा कोई भी उन्हें लाया ही नहीं था। एक ने पूछा—मास्टरसाहब घरसे लेते आवें। दूसरे ने परसों दिखाने का वादा किया।

मिश्रजी ने फिर दूसरे चार लड़कों को बुलाकर पूछना प्रारम्भ किया—तुम्हें इस पुस्तक की कोई कहानी याद है। एक लड़का बोला जी हाँ। एक राजा के सात रानियाँ थीं। तो एक दिन एक साधू आया और तब राजा ने साधू से कहा कि ऐ साधू मैं जो हूँ वह तुमको खाना खिलाऊँगा।

'हाँ यह तो बताओ यह पाठ तुम्हारी पुस्तक में कहाँ है। एक लड़का बोला—यह कहानी मेरी बुआजी मुझे सुनाती हैं।

परीक्षा चल ही रही थी कि एक लड़के ने इतनी जोर से बेंच को हिलाया कि उसपर बैठे हुए चारो लड़के जमीनपर गिर पड़े। मिश्रजी की नाक में दम था। तीसरी कक्षा के छात्रों का यह समूह उन्हें बर्रे के छत्ते से कम भयकर नहीं प्रतीत होता था।

अब मुझे मालूम हुआ कि मिश्रजी छोटे बच्चों, यहाँ तक कि अपने बच्चों को भी पढ़ाने से क्यों घबराते हैं!

विज्ञापन के फेर में

न मालूम किस घड़ी बाबू निर्गुणप्रसाद ने इस घड़ी का विज्ञापन अखबार में छपवाया। उस घड़ी अवश्य व्यतिपात योग रहा होगा। उन्हें इस घड़ीके कारण आज दस बारह दिनों से घड़ी-घड़ी कष्टों का सामना करना पड़ रहा है।

बात यह हुई कि एक दिन कचहरी से मुकदमे की पैरवी करके घर लौटते समय उन्हें एक (रिष्टवाच) कलाई की घड़ी रास्ते में गिरी हुई मिली। बाबू साहब के भी कई सामान जैसे, मुकदमे के कागजपत्रों के बस्ते, शेयर सर्टिफिकेट आदि खो चुके थे। ऐसे अवसरोंपर उन्होंने अखबारोंमें विज्ञापन छपवा दिया था। इनाम देने का प्रलोभन भी दिया था! पर दो या तीन बार ही उन्हें खोई वस्तु प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ था। अन्यथा कई बार वे टापते ही रह गये थे। इस बार भी उन्होंने सोचा कि विज्ञापन छपवा दें, जिसका होगा आकर ले जायगा। मैं किसी की घड़ी अपने पास रखकर क्या करूँगा।

विज्ञापन छपने के दूसरे ही दिन जब वे भोजन करके लेटने जा रहे थे चार व्यक्तियों ने उनके बँगलेके हातेमें प्रवेश किया। नौकरों ने नाम और काम पूछा तो उन्होंने कहा—अपने मालिक को बुलाओ, उन्हीं से हम अपना नाम, काम बतलावेंगे।

बाबू निर्गुणप्रसाद भल्लाये हुए बाहर आये तो उन व्यक्तियों मे से एक बूढ़ेने कहा—चिरंजीव, चिरजीव, अहा आप ही बाबू निर्गुणप्रसाद हैं। हमें आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कहिए आपके बाल-बच्चे तो मजे में हैं?

जी हाँ आपकी कृपा है—'निर्गुण बाबू ने कुछ शीघ्रता से कहा—पर यह तो बताइए कि आप लोग किसलिए इस प्रचण्ड धूप मे पधारे हैं।

'अरे धूप की एक ही रही। हम लोग यदि धूप से घबड़ाने लगें तो संसार में रहना ही छोड़ दे। अच्छा निर्गुण बाबू आपकी शादी कहाँ हुई है ?

'जी, मेरी शादी बलरामपुर में हुई है ? पर आपसे इससे क्या मतलब ?'

'वही तो, वही तो। देखिए मैं बतलाता हूँ न। बलरामपुर में तो मै कई साल रह चुका हूँ। किसके यहाॅ आपकी शादी हुई है।

'श्री बाबू अनोखेलालजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट के यहाँ।

ओह हो, तो बाबू अनोखेलालजी की लड़की के आप दामाद, हरे हरे पति हैं। तो पहले ही क्यों नहीं बता दिया बेटा ! यह कहते हुए वृद्ध महाशय, जो अब तक खड़े थे, पास की एक कुर्सी पर विराजमान हो गये।

'हाॅ तो अनोखेलालजी को भला मैं न जानूॅ। मेरे तो वे लॅगोटिया यार ही थे। मेरा घर उनके घर से पाँच ही सात घरों के फासले पर था ! क्यों जी बुझावन सिह, तुमने भी अनोखेलालजी को देखा होगा। वही जो उस दिन मेरे घरपर शाम को आये थे। •

'हाँ चाचा, मैंने ही तो उन्हें पान बनाकर दिया था। मै क्या उन्हें नहीं जानता !'

'अरे राम राम, यह मुझे आज मालूम हुआ कि अनोखे-लालजी के दामाद भी कानपुर में ही हैं। बेटा ! तब तो मैं भी तुम्हारे ससुर का साथी होने के नाते तुम्हारे ससुरके ही समान हुआ। तो बिटिया तो मजे में है न।

निर्गुण बाबू को थकावट के मारे नीद आ रही थी। इन सबने आकर उनकी निद्रा में विघ्न डाला था, इससे मन-ही-मन वे इन लोगो पर झल्ला रहे थे। पर ससुर साहब के परिचित होने के कारण ये लोग कुछ-कुछ सम्मान के भी पात्र बन चुके

थे। इसलिए पूछा—कहिए कुछ पान-इलायची भी मँगवाऊँ ?

'बेटा पानवान तो मैं खाता नहीं। दाँत ही कितने रह गये हैं। हाँ थोड़ा ठण्डा पानी मंगवा दो, तो पी सकता हूँ। कुछ मीठा सीठा न मंगवाना, अभी अभी खाकर चला हूँ।'

'अच्छा, यह तो बताइए आप लोगों ने कैसे कष्ट किया। निर्गुन बाबू ने कुछ उत्सुकतापूर्ण शैलीमें पूछा।

'हाँ वही तो, मैं बतलाता हूँ न। अहाहा ! अनोखे बाबू भी कितने अच्छे आदमी हैं। अभी जीवित हैं न बेटा।

'जी नहीं, परसाल ही तो उनका वैशाख में देहान्त हुआ है।'

'हाय हाय, अनर्थ हो गया।' कहकर बुड्ढे ने ऐसा मुँह बनाया मानों उसके सिरपर वज्रपात हो गया हो। 'अनोखे बाबू, यह जानकर कि आज तुम इस संसार में नहीं हो, मेरे हृदयपर क्या बीत रहा है मैं ही जानता हूँ। भाई तुम कितने नेक थे। मेरे यहाँ प्रायः हर रोज सन्ध्या समय आया करते थे। अपनी कन्या के विवाह में तुमने मुझे बुलाया था, पर मैं उस समय व्यापार के काम से जयपुर चला गया था। इसीसे बेटा निर्गुण की शादी में नहीं पहुँच सका था और इसी से ये मुझे पहिचान भी न सके।

पानी पी चुकने के पश्चात् वृद्ध महाशय ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—बड़े ही लायक आदमी थे। क्यों रूपनलाल तुम भी तो उन्हें चाचा कहा करते थे न ?

'जी हाँ' रूपन ने तुरन्त ही उत्तर दिया। 'और वे कितने खुशदिल थे और मुझे तो अपने बेटे के ही समान मानते थे।

'अच्छा कृपया अब अपने आने का प्रयोजन तो बताइये जिससे मैं निश्चिन्त होऊँ।'

'बेटा निश्चिन्त इस संसारमें आकर कोई हुआ है। यह संसार ही चिन्ता का अपार समुद्र है, यहाँ निश्चिन्त होने की

कल्पना करना ही अव्वल नम्बर की मूर्खता है। राजा से लेकर रंक तक सभी चिन्तामग्न हैं। कोई रोता है कि लड़का नही है, यह सब जायदाद कौन भोगेगा, तो किसी को इतने लड़के बच्चे हैं कि वह दोनों समय खिला-पिला भी नहीं सकता।

क्यों बुझावनसिह झूठ कह रहा हूँ ?

'नहीं चाचा झूठ काहे है। ई तो सबत्तर दिखाई ही दे रहा है ?

'वही तो देखो न, अभी अनोखे बाबू की उम्र ही क्या थी। यही पचास के करीब रहे होंगे, क्यों निर्गुन बाबू? जी नहीं ६५ के भी ऊपर थे।' निर्गुण बाबू ने उत्तर दिया।

'हाँ, हाँ, पैंसठ से क्या कम रहे होंगे, पर लगते वे पचास से भी कम के थे। इसी से तो मैंने पचास ही कहा। क्यों रूपन, पचास से अधिक के तो वे नहीं लगते थे न।

'अच्छा महाशय, चाहे वे पचास के लगते रहे हों या पछत्तर के, अब तो वे मर ही गये। अब व्यर्थ में उनके नाम रोने से से क्या होगा ? आप अब काम की बाते कीजिए।

'हरे राम राम, यह क्या कह रहे हो बबुआ ? अपने मित्र के नाम रोना क्या व्यर्थ का काम है ? तुम्हारे भी तो वे ससुर थे न ! तब तुम क्या उनके मरने से दुखी न हुए होगे ! लोग मरने पर तो पिण्डा पानी दिया करते हैं। तब क्या उनके नाम रोना भी व्यर्थ है। माफ करना बेटा, तुमने अंग्रेजी पढ़ी है, इसलिए पितरों पर चाहे उतनी श्रद्धा न रखो, पर मैं तो पुराने जमाने का आदमी हूँ। मैं तो अभी तक अपनी पुरानी वंश-मर्य्यादा पर ही कायम हूँ। नये पढ़े-लिखे लोग हम लोगों की हँसी उड़ाते हैं, तो उड़ाने दो। पर वे लोग भी तो कम-से कम नेताओं के मरने पर शोक-सभा करते ही हैं। हे ईश्वर धीरे-धीरे जमाना कितना बदलता जा रहा हैं। यह कहकर वृद्ध ने एक लम्बी साँस ली।

बाबू निर्गुणप्रसाद हैरान थे। यह बुड्ढा तो बड़ा खुर्राट

निकला। काम बतलाता नहीं है, उपदेश करने बैठ गया। अब-की बार उन्होंने कुछ खीझकर कहा—जी हाँ, सो तो है ही, हम सब लोग आप लोगों पर हँसते हैं या नही यह आप जानें, पर रोते अवश्य हैं। आप लोगों को, क्षमा कीजिएगा, कमसे कम, समय का मूल्य नही मालूम है। मुझे अभी विश्राम करके तीन बजे एक आवश्यक काम से वकील के यहाँ जाना है। अतः मुझे तो आज्ञा दें। अगले रविवार को मैं दिनभर खाली रहूँगा, आप लोग आकर मेरा जितना दिमाग चाट सकिएगा, चाट लीजिएगा!

इस खरी बात का वृद्धपर प्रभाव पड़ा। वह बोला—क्षमा कीजिएगा निर्गुण बाबू। हम लोग आपका समय नष्ट करने नहीं आये थे। वह तो आपने ही बताया कि आप अनोखे बाबू के दामाद हैं इसलिए आपको देख मेरा वात्सल्य उमड़ पड़ा और अनोखे बाबू के मरने का समाचार सुनकर कुछ कष्ट हुआ जिससे मैंने इतना समय आपका ले लिया नहीं तो हम लोग भी काम-काजी हैं। कोई चोर चाईयाँ नही हैं।

'तो आप अपने आने का प्रयोजन बतलाइए न?'

'अच्छा तो सुनिए, आपने कोई घड़ी गिरी हुई पाई है। उसी घड़ी को मै लेने आया हूँ। सो कृपया शीघ्र देकर हमे बिदा कीजिए। आप भी जाकर सोइए, और हम लोग भी अपना काम-धाम देखे।

'अच्छा तो वह घड़ी आपही की थी! पर उसकी हुलिया तो बताइए कि वह कैसी है, किस कम्पनी की है। बिना पूरा इत-मीनान किये तो मै यह जिसी किसी को दे न दूँगा।' निर्गुण बाबू ने उत्तर दिया!

'अरे राम राम, तो आप हम लोगों का विश्वास नहीं करते। क्या हम लोग चोर या उठाईगीरे हैं। आप मित्र के दामाद होकर ऐसी बातें करते हैं। अरे राम राम कलियुग है न। अब

लोगों में विश्वास तो रहा नहीं।

'जी नहीं महाशय मैं आपका खूब विश्वास करता हूँ। पर मान लीजिए एक दूसरा आदमी आकर कहे कि घड़ी उसकी थी, और वह उसकी पहिचान भी बतावे, तो मै उसे क्या उत्तर दूँगा। यह तो व्यवहार की बात है। इसमें आपके नाराज होने ही तो कोई बात ही नहीं।

'तो मत दीजिए। एक घड़ी के पीछे मैं अपने मित्र के दामाद से झगड़ा मोल थोड़े ही लूँगा। अरे आपकी शादी के समय मैं रहा होता तो एक घड़ी आपको खिचड़ी के रस्म पर देता ही। मैं समझ लेता हूँ कि तब न सही तो अब सही! पर जब आप मेरा विश्वास ही नहीं करते तो मैं हुलिया न बताऊँगा। चलो बेटा बुझावनसिंह चला जाय।'

यह कहकर वृद्ध महाशय मुँह फुलाये हुए अपने साथियों के साथ शीघ्रतासे बँगलेके फाटक के बाहर हो गये।

निर्गुन बाबू बिस्तरेपर लेटकर सोनेका उद्योग करने ही चले थे कि किसीने दालानमें आकर आवाज दी। अरे मकान में कोई है? कोई तो नहीं दिखाई पड़ता। कोई महरा भी तो नहीं दिखाई पडता। अरे निर्गुण बाबूका मकान यही है।

झल्लाए हुए निर्गुण बाबू फिर उठे और दरवाजा खोलकर बाहर आये। देखा एक ब्राह्मण, खड़े हैं। बालोंकी अच्छी जटा सिर पर थी और लम्बी दाढ़ी मुख की शोभा बढ़ा रही थी। निर्गुण बाबूने नमस्कार करके पूछा,'कहिए किस प्रयोजन से आना हुआ?'

प्रयोजन! यह आपने खूब कहा महाशय, क्या बिना प्रयोजन कोई किसीके यहाँ आता है। शास्त्रोंमें भी लिखा है कि प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते। पर जरा सुस्ता लूँ, तो प्रयोजन बताऊँ। घामके मारे चमड़ी तड़क गयी है। 'चलो यह दूसरी बला पहुँची।' निर्गुन बाबू ने कुर्सी पर बैठते हुए मन-ही-

मन कहा। उन्होंने सोचा सम्भव है ये भी उसी घड़ीकी ही फिराक में आये हों। इसलिए मैं इन्हें स्वयं प्रयोजन बतलाऊँ, जिससे शीघ्र छुट्टी मिले! बोले—हाँ महाराज आप खूब सुस्ताइए। मालूम पड़ता है आपकी कोई चीज खो गई है जो इस घाम में चले आ रहे हैं।

ब्राह्मण देवता उछल पड़े। बोले अहाहा। आपने एकदम यथार्थ कहा। क्यों न हो आखिर तो धनवान, पुत्रवान, गुणवान और सुशील, उच्चवंशीय हैं न। व्यक्ति को देखा और उसका अभिप्राय समझ लिया। यह साधारण लोगों के वश की बात नहीं। यह पूर्व जन्मके संस्कार का परिणाम है। कहा भी है पूर्व जन्मे तु या विद्या, पूर्व जन्मे तु यद्धनम्। पूर्व जन्मे तु या नारी अग्रे धावति, धावति। सो जो है सो जाय करके आपने बाबूजी मेरा अभिप्राय ठीक समझा। यह कहकर पण्डितजी ने सुँघनी सूँघकर बड़े जोर से चार पाँच बार छींका। अच्छा तो कौन सी वस्तु खोई है देवताजी। घड़ी तो नहीं है। अहाहा। क्या सुन्दर अनुमान है आपका। आप तो पूरे नैयायिक निकले। यत्र यत्र धूमस्तत्रतमाग्निः मुक्तावली में अनुमान खण्ड भी क्या ही सुन्दर है। हाँ, भाग्यवान, मेरी ही घड़ी खो गई है और तन्निमित्त करके ही मैं आपके पास आया हूँ।

'अच्छा, तो आप घड़ी भी बाँधते थे। रूप तो आपका साक्षात् संन्यासीका-सा है, फिर इस घड़ीसे क्या प्रयोजन ?' निर्गुण बाबू ने कुछ परिहास के स्वरमें कहा।

'अरे वत्स मैं तुम्हारे पितृव्य की अवस्था का हूँ, मुझ से परिहास न करो। मैं तो यहीं के कलक्टरगंज की संस्कृत पाठशाला का व्याकरणाध्यापक हूँ। घड़ी वास्तव में मेरे पुत्र की है। वह अंग्रेजी कपड़े पहिनता है और वही घड़ी-सड़ी भी पहनता है। उसकी घड़ी तीन चार दिन हुए खो गई थी। तब से उसकी माता ने

अन्नजल त्याग रक्खा है। लाचार हो मुझे आना पड़ा है।

'तो आप घड़ी को पहिचानते हैं।'

अरे क्या मैं घड़ी भी नहीं पहिचानता। मैं स्वयं घड़ी नहीं पहिनता तो क्या पहिचानता भी नहीं। सैकड़ों घड़ियाँ नित्य देखा करता हूँ। एक घड़ी तो चौराहे पर घण्टाघर में ही है। यह आप कैसी बात करते हैं!

'जी नहीं जो घड़ी खोई है, उसका रूप रंग कैसा है, यह बता सकते हैं ?

'नहीं बाबा, यह सब प्रपञ्च मैं नहीं कर सकता। आप मुझे घड़ी दीजिए और मैं चलूं। घड़ी-सड़ी पहिचानना हमारा काम थोड़े ही है। किसी सूत्र का भाष्य पूछिए तो मैं बताऊँ भी।

'पर पण्डितजी' सूत्र के भाष्य बनानेसे वह घड़ी आपको नहीं मिल सकती। अपने लड़के को भेजिए वह पहचान बताकर ले जाय।

'हूँ हूँ, लड़के को भेजिए। लडका साला क्या हमसे अधिक विद्वान् है, जो उसे आप घड़ी देंगे। आप एक वृद्ध ब्राह्मण का अपमान कर रहे हैं। आपका सर्वनाश हो जायगा।

ब्राह्मण देवता चले गये। इस परेशानी से बचने के लिए निर्गुण बाबू ने घड़ी ले जाकर तुरन्त ही 'प्रताप-कार्यालय में जमा कर दी।' घड़ी के कारण वे कई दिन सो भी न सके थे।

मेरी पेंसिल

पेंसिल शब्द किस भाषा का है, यह तो आपको डाक्टर मंगल देव शास्त्री बतलावेंगे, पर मै आपको इतना अवश्य ही बतला दूँगा कि मेरे पास एक पेंसिल है। आपको सम्भवत: आश्चर्य होगा कि मेरे पास पेसिल कैसे ? कारण लेखकों और कवियों के पास पेन्सिल और कलम का प्राय: उसी प्रकार अभाव रहा करता है जिस प्रकार प्रगतिशील खोपड़ी में धर्मभाव का अथवा छाया वादी कवि के मुखचन्द्र में मुच्छनामक अनावश्यक पदार्थ का।

न तो मै प्रगतिशील हूँ, न छायावादी। तो शायद इसी से मेरे पास एक पेसिल रह गई है। पेसिल प्राय: मेरे पास यों नहीं ही रह पाती है। मित्रों के मारे। बाबू झटकूराम तो मेरी जेब से कई बार फाउण्टेनपेन और पेंसिल निकाल ले जा चुके हैं। इसी से मैंने फाउण्टेनपेन खरीदना ही छोड़ दिया है। हाँ पेंसिल मैं अवश्य खरीदता हूँ। पर जिस पेंसिल की बात कह रहा हूँ उसे खरीदे आज सवा सात वर्ष हुए। मैं उससे अब तक चौदह लेख लिख चुका हूँ, पर वह अबतक घिसी नहीं। जनरल च्यांग काई शेककी तरह वह अब भी कागजपत्रों से मोर्चा लेने के लिए दृढ़ता-पूर्वक तैयार है।

केवल लिखने के ही लिए मैं पेन्सिल का प्रयोग करता होऊँ सो बात नहीं है। तीन पैसे देकर जिस पदार्थ का क्रय किया है, उसे केवल अवसर विशेषपर, महज कागज काला करने के लिए निकालूँ, ऐसा मूर्ख मैं नहीं हूँ। मैं उससे और भी काम लेता हूँ। लोग 'एक पन्थ दो काज' करके ही अपने को परम बुद्धिमान् समझते हैं; पर मैं इस स्वनामधन्य पेंसिल से एकपन्थ दस काज करके भी विनम्रता और शिष्टतावश अपने को बुद्धिमान् कहना नहीं पसन्द करता। यों मेरे कृपालु मित्रों की सम्मति है कि

पेंसिल का ऐसा सदुपयोग दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर पाता, इसलिए उनकी समझसे मैं एक विचारवान् व्यक्ति हूँ। और यदि ऐसा विचारवान् मै न होता तो मेरी सोने की गृहस्थी कभी मिट्टी मे मिल गई होती।

दसो काज सुन लीजिए। आपको देर तो नहीं हो रही है?

पेंसिल से लिखता तो हूँ ही, उसी से कान का खूँट भी निकालता हूँ। दाँतोंके खोंडरोंमें जब काशीके लब्धप्रतिष्ठ मुसई तमोलीके पानकी सुपारी प्रविष्ट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे मेलोंके समय रेल के डब्बोंमें बिना टिकट के यात्री, तो उस समय इसी पेन्सिल की अमोघ सहायतासे, सुपारी को इसी प्रकार निकाल बाहर करता हूँ, जिस प्रकार मिस मेयो की देशवालियाँ तनिक-तनिक सी बात पर अपने पतिदेवों को।

मेरी श्रीमतीजी को सवेरे सोकर उठने में जरा सी देर हो जाया करती है। बस बहुत जरा सी देर। अर्थात् जब मै दफ्तर जानेके लिए कपडे पहनने लगता हूँ, तबतक वे उठ जाती हैं। करें क्या बेचारी। दिनभर गृहस्थी में पिसने के बाद कहीं जाकर रातके पौने आठ बजे वे सो पाती हैं। और दोपहर में केवल दो ढाई घण्टे के लिए ही उनकी आँखे झपकती हैं। सो उनका इसमें क्या अपराध। खैर इतना मै आपको बतला देता हूँ कि········ (देखिए इज्जत आपके हाथों में है, किसी से कहिएगा नहीं)······ कि मैं अपनी श्रीमतीजी से उसी प्रकार भयभीत रहता हूँ जिस प्रकार इक्केवाले विश्वविद्यालय के लड़कों से या कांग्रेस मिनिस्टरी मुसलमानों से। अतएव मेरा साहस नहीं होता कि मैं शब्दों की सहायतासे श्रीमतीजी को जगाऊँ। फलतः अपने खुर्राटों द्वारा सम्पूर्ण मुहल्ले को संगीत की ग्राम-मूर्च्छना आदि की शिक्षा देनेवाले तथा अपने माधुर्य्यबलसे बी० एन० डब्ल्यू० रेलवेके इञ्जनकी सीटी और बिजली-घरके भोंपे की सम्मिलित ध्वनि-माधुरी को

तिरस्कृत करनेवाले, उनके नासिका-रन्ध्रोंमें अपनी इसी पेन्सिल-सखीका प्रवेश करा देता हूँ। और फल क्या होता है? जिस प्रकार चलती ट्रेनसे कूद-कूदकर खाकसार भागे थे, उसी प्रकार वे चारपाई पर से कूदकर सीधे बरामदेमें भागती हैं और तबतक मुझे चारपाई के नीचे छिप जाने का पर्याप्त से अधिक अवसर मिल जाता है।

और भी बतलाऊँ कि मैं पेंसिल से क्या करता हूँ।

कभी कभी टोपी टाँगने की खूँटी जब चिरजीवी मुन्नू बाबू अपनी कुतिया की सिकड़ी बाँधने के लिए उठा ले जाता है, तब मैं उस खूँटी के छेद में अपनी इसी पेंसिल को गाड़कर अपनी दुपल्ली टोपी उस पर लटका देता हूँ।

छोटी भाञ्जी को लाख समझाता हूँ। सात आठ साल की हो गई है. पर उसके गुड्डे के बूढ़े बाप को जब छड़ी या सोंटे की आवश्यकता होती है, तो वह मेरी पेंसिल को ही छड़ी का पर्य्यायवाची शब्द समझकर उठा ले जाती है।

पर मेरी ऐसी उपयोगिनी पेन्सिल किसी के मारे बचने पाये तब तो। लाख बार मना किया कि मेरी पेंसिल पर हाथ न लगाया करो। पर श्रीमती जी मानती ही नहीं। यद्यपि उनके पास मैके से मिली हुई पचीसों पेंसिल, कलम, फाउण्टेन आदि आदि लेखन सामग्रियाँ होंगी, पर, तथापि, फिर भी जब कभी उन्हें धोबी का हिसाब लिखना होगा तब मेरी ही पेंसिल की खोज होगी। उनसे लाख कहता हूँ कि देखो यह एक विशेष महत्त्व की वस्तु है। अभी उस दिन सुप्रसिद्ध कलाविद रायकृष्णदास जी मुझसे यह पेंसिल कला-भवन मे रखने के लिए माँग रहे थे। आखिर उन्हें कब तक टरकाऊँगा। एक न एक दिन वह बाबू झटकूराम की तरह इस पेंसिल को मुझसे झटक ही ले जावेंगे। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की पगड़ी, कविसम्राट् पं० अयोध्या सिंह

उपाध्याय की दाढ़ी के काले बाल मुंशी अजमेरी के पायजामे का इजारबन्द, प्रसादजी का लँगोटा, सुभद्रा कुमारी चौहान का फटा जम्पर, बा०जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की शेरवानी तथा बा०गोपाल-राम गहमरी का अँगोछा आखिर वे लोग ले ही गये ! अपने अपने कला-भवनों और संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने के लिए ! तब भला मेरे लाख नाहीं-नूहीं करने पर भी वे मेरी पेन्सिल को छोड़ेंगे। उस पेन्सिल को जो कभी कभी कुछ साहित्यिकों के असाध्य रोगों के लिए 'पेसिलिन' से बढ़कर उपयोगी प्रमाणित हुई है।

पर श्रीमतीजी मानती ही नहीं। लाख कहता हूँ—तुम बाबा मेरी पेन्सिल पर अपनी चील या खञ्जन दृष्टि न डाला करो। पर यहाँ सुनता कौन है। जब कभी लेख लिखने बैठूँगा और देखूँगा कि मेज पर पेन्सिल है या नहीं तो यही निष्कर्ष निकलेगा और मैं इसी परिणाम पर पहुँचूँगा कि पेन्सिल अपने स्थान पर नहीं है। हाय हाय ! ब्रह्मा ने स्त्रियों को बुद्धि क्यों नहीं दी !

यदि सरकार मनुष्य-गणना करावे तो उसे मालूम हो कि सौ में नब्बे आदमियों की नाक चिपटी होती हैं, सौ में एक्यानबे आर्यसमाजी रँडुआ होते हैं, सौ में पञ्चानबे नौकरियों पर बगाल में मुस्लिम या मुस्लिम-परस्त रखे जाते हैं, सौ में सत्तानबे बौद्ध मांसाहारी होते हैं, और सौ में निन्यानबे सम्पादक परम लण्ठ होते हैं !

सौ स्त्रियों में एक स्त्री सीधी होती है। पर हठी तो सभी अर्थात् शत प्रतिशत होती हैं। नाम ही ठहरा बामा। बामा के सम्मुख बड़े बड़े गामा सुदामा की तरह दीन और दलाईलामा की तरह धर्मभीरु बनकर पत्नी-प्रताप नामक ड्रामा का अभिनय करने लगते हैं !

दूसरा कोई हो तो मैं उससे कुछ चीं-चपड़ करूँ भी। पर श्री श्री श्री १००८ एक हजार आठ श्रीमतीजी से विवाद करना कुछ

उचित नहीं मालूम पड़ता। यही कारण है कि प्रायः उनके सभी अत्याचार चाहे वह पेन्सिल-सम्बन्धी हो या सिनेमा जाते समय उनकी साड़ी के रंग-निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़े के बारे में हो, मै बिना कान-पूँछ हिलाए उसी प्रकार सह लेता हूँ जिस प्रकार अपनी कन्या के विवाह में लोग समधी और बरातियों के अत्याचार सह लिया करते हैं!

पर कभी कभी अत्याचार के विरोध का साहस निर्बलों में भी हो ही जाता है। आखिरकार कोई कब तक सहे! दफ्तरों के बाबू नामधारी क्लर्क लोग भी अपने मालिकों के अनुचित आदेशों तथा अधिक काम करने के कष्टों के फलस्वरूप, विरोध प्रकट करने की मुद्रा में अपना सिर पीटते हुए अनेक बार देखे गये हैं।

इसी सप्ताह की बात है। उस दिन मेरी पेंसिल अपने स्थान से फिर गायब थी। यहाँ खोजा। वहाँ खोजा। दियासलाई की डिबिया, पनडब्बा, और च्यवन-प्राश की बोतल से लेकर पिसान की गगरी तक में ढूँढ़ा पर कहीं तो पेंसिल का पता चलता।

कुछ क्रोध, कुछ भय, कुछ उत्साह, कुछ घबड़ाहट के साथ, सभी स्थायी और सञ्चारी भावों का पचमेल अँचार बना हुआ, मैं रसोईघर की ओर चला। श्रीमतीजी जलपान के लिए कुछ सेव और समोसे बना रही थीं। उफ जब देखो तो नमकीन पदार्थ! कभी तो गुलाबजामुन या खोये की बर्फी बनाती। अरे साहब हलवा तक नहीं। जब देखो तो चाय के साथ समोसे। नमकीन चीजें तभी गले से उतर सकती हैं जब उसके साथ कुछ मिष्टान्न भी हो। कई बार समझा दिया कि ब्राह्मण होकर मिठाई से विद्वेष करना वह पातक है जिसका प्रायश्चित्त भगवान् मनु तक नहीं बता सके। क्रोध में था ही, ये सामग्रियाँ उद्दीपन हो गईं।

'क्यों जी! तुम···तुम···अरे आपने मेरी पेंसिल कहीं रख तो नहीं दी है, भूल से'—मैंने लड़खड़ाती जबान से कहा।

'अरे वाहरे पेन्सिलवाले; नयी नाउन बॉस की नहन्नो! जब देखो तब तुम्हारी पेंसिल गायब! और खोजना दरकिनार, पहुँच गये मेरे सर पर! मेरे बाप ने क्या तुम्हारी पेन्सिल खोजने के लिए मुझे नौकर बनाकर भेजा है? या तुम्हीं मुझे इस काम के लिए कुछ वेतन दे देते हो! जलपान भी सवातीन बजे ही चाहिए और पेन्सिल भी चलकर मैं ही खोजूं'—तड़पती हुई गोरिंग-तुल्य गहन गम्भीर निनाद से श्रीमतीजी ने कहा।

श्रीमतीजी की यह हिटलरशाही देखकर और उनकी यह लाउडस्पीकरी ध्वनि सुनकर मेरे मुखमण्डल पर पसीने की बूँदे चुहचुहा उठीं?

'मैं...मैं...मेरा...मेरा यह मतलब यानी मेरा यह मतलब नहीं था कि तुम अरे यानी आप चलकर उसे खोजें'...मैंने श्वान पुच्छसे भी अधिक कम्पित आवाजमें कहा—'मैं केवल यह कहना चाहता था या कहनेके लिए आया मात्र था कि सम्भवतः तुमने उसे कहीं देखा हो। मैं आपसे कुछ विशेष कहना नहीं चाहता था।

श्रीमतीजीने मुझे सिरसे पैर तक और फिर पैरसे सिर तक क्रोधकी मुद्रामें देखा और फिर कुछ मुस्कराईं। परन्तु मुस्कराहट को दबानेकी असफल चेष्टा करते हुए फिर बोलीं—अजी तुम मुझ-से विशेष हो या सामान्य, कहोगे क्या? और वह भी किस मुंह से? जरा शीशेमें अपना मुँह तो देखो! आह बकबकमें मेरा समोसा जल गया।'

मैं हण्टर की चोट खाये हुए कुत्ते या दिल्ली से क्रिप्सिमिशन के असफल होने के बाद लौटे हुए नेताओं की भाँति अपने कमरे की ओर चला। उफ, इतना अपमान! मैं अपना मुख शीशे में देखूं। माना कि इनकी तरह खूबसूरत नहीं हूँ। पर इतना बुरा भी तो नहीं हूँ।

फिर कवि और लेखक सभी सुन्दर तो नहीं होते।

जायसी काने थे, पर पद्मावत जैसा प्रेमकाव्य लिख ही गये। मैं काना नहीं, लँगड़ा नहीं। सालियाँ और सरहजें मुझे किस दृष्टि से देखती हैं, क्या मैं नहीं जानता। अभी आज 'लीडर के' 'मैट्रिमोनियल' स्तम्भ में विज्ञापन छपवा दूँ तो पचीसों कवयित्रियाँ और सम्पादिकाएँ प्रार्थना-पत्र भेजने लगें। पर क्या गालों पर पान का कत्था तो बहकर नहीं लग गया है, जो श्रीमती जी ने मुझसे शीशे में मुँह देखने को कहा है। जरा देखूँ तो।

कमरे में जाकर दर्पण मे मुखावलोकन किया। मुँह में न कत्था लगा था न चूना। पर उसमें जो कुछ देखा उसका न कहना ही अच्छा है। आप शायद मुझे भुलक्कड़ कहने की धृष्टता करेंगे।

मैंने देखा—मेरी पेंसिल मेरे कान पर थी।

जन्माष्टमी सन् १६४२

'हाँ तो भादों बदी अष्टमी को इस प्रकार कर कर करके सिरी किसुनजी महाराज मथुरा में अवतार लेते भये।'

चौकाघाट पर बरना के किनारे व्यास बल्लूरामजी भागवत की कथा बाँच रहे थे। पचास-साठ श्रोता लोग भी एकाग्र भाव से कथा सुन रहे थे। पर उन सबमें सबसे एकाग्रचित्त थे हमारे मथुरा तमोली। उन्होंने उस दिन अफीम कुछ अधिक मात्रा में ली थी। इसलिए वे इस समय धराधाम को त्यागकर किसी कल्पना-लोक में विचरण कर रहे थे। कल रात में उन्होंने अपने चचेरे भाई की जेब में से दस रुपये का नोट निकाल लिया था। अब डर रहे थे कि कही बात खुल न जाय। एक तो अफीम की पिनक उस पर चोरी खुलने का डर! वे कभी पिनक में सोचते कि स्वर्ग-लोक पहुँच गये हैं और धर्मराज के दरबार मे पेश किये गये हैं। यहाँ उन पर दस रुपए की चोरी का अप-

राध लगाया गया है। चित्रगुप्तजी उनके लिए कुछ लिख-पढ़ रहे हैं। इतने में ही व्यासजी के ये शब्द उनके कान में प्रविष्ट हुए कि मथुरा ·····लेते भये। फिर क्या था मथुरा तमोली इतने जोर से चौंके कि उनका चश्मा पृथ्वी पर गिर पड़ा और पुराना फ्रेम एक बटे दो हो गया।

व्यासजी श्रोताओं को बड़े प्रेम से, अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर-फेरकर बतला रहे थे कि जब किसिनजी उत्पन्न होते भये, तो किस प्रकार पहरेदार सो गये और वसुदेव-देवकी की हथकड़ी बेड़ी टूट गई। कैसे वसुदेवजी उन्हें नन्द के यहाँ ले आते भये आदि आदि।

इतने में ही लकड़ी बेचनेवाली बुढ़िया मोटासी नाम की अहीरिन जोर जोर से रोने लगी। व्यासजी ने कहा—धन्य धन्य। भक्ति का प्रवेश भी क्या ही चीज है। क्यों बूढ़ी माँ तू काहे को रोती भई?

'का बताई महाराजजी, कुछ कहतै नहिनो बनत'—'बुढ़िया ने हिचकी लेते हुए कहा—हमरे पास एक बकरा रहल महराज। तवन ओहू क दाढ़ी निरफुल तोहरै मतिन रहल। का बताई मह-राज, पर साल एही असाढ़ में ऊ बकरवा जात रहल। तोहरै मतिन उही दढ़िया हिलाय हिलाय के हमरे पँजरवाँ आयके खेलवाड़ करत रहल। ओही क खयाल आय गयल, तवन हमार जिउवा कचोटे लगल।'

व्यासजी तो सन्न रह गये। यह बुढ़िया तो अजीब गँवार निकली। मान लिया कि उसे बकरे की याद आ गई। तो इसमें रोने की कौन सी बात थी। और फिर इतने आदमियों के सामने यह इतिहास बताने की आवश्यकता ही क्या थी। पर गलती मेरी जो मैंने कारण पूछा। लोग कैसा मुँह फेर-फेर कर मुस्करा रहे हैं। पर क्या मेरी दाढ़ी बकरे की दाढ़ी की ही तरह है। यह मैं

कैसे मान लूँ। अस्तु अब तो जो हो गया सो हो गया। भविष्य में गँवारों से बातचीत करने में अधिक सावधान रहना पड़ेगा।

व्यासजी ने फिर कथा चालू की। हाँ तो नन्द ने ज्योंही सुना कि उनके यहाँ श्रीकिसनजी ने अवतार लिया है तो वे खुशी के मारे विह्वल हो गये। ब्राह्मण बुलाये गये, उन्हें गाएँ दान की गईं। गानवाद्य होने लगा। ग्वालबाल सड़कों पर दही उछालने लगे।

उस समुदाय में एक नई रोशनी के पढ़े-लिखे युवक बैठे थे। उन्होंने खड़े होकर प्रश्न किया—पण्डितजी, ब्राह्मण को बुलाकर गाय को दान किया। और गाय खरीदना चाहता था कि लड़का दूध पीवे कि घर में की भी गाय निकाल कर किसी और को देना उचित था। फिर दही को सड़क पर फेंकना कहाँ की बुद्धिमानी थी।

व्यासजी ने कहा—गऊ दान न करते तो क्या गधी दान करते। तुम लोगों को तो बस अपना पेट भरने से मतलब! देवता ब्राह्मण साधु-संन्यासी को कुछ मिलते देखते हो तो मन मसोस कर रह जाते हो। फिर नन्दजी के यहाँ दो चार गउएँ तो रही न होंगी। वह एक ऐसा समय था कि जब एक एक व्यक्ति के यहाँ हजार हजार गाएँ हुआ करती थी। उस युग को तो जाने दो, मेरे बचपन मे ही ऐसा कोई व्यक्ति इस बनारस में नही था, जिसके यहाँ एक गाय न रहती हो। बाजार का पानी मिला हुआ दूध कौन पूछता था। मैंने ५ आने सेर की मलाई खाई है तब तो इस पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी चाहूँ तो तुम्हारे ऐसे चार को बगल में दबा लूँ।

अन्तिम वाक्य का उस युवक पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा और वह चुप रह गया। व्यासजी कहते ही गये—आज का समय भइया बड़ा विकराल है। हिन्दू लोग गऊ को माता तो कहते हैं, पर उसकी रक्षा का कोई प्रबन्ध करते हैं। गंगा में मलमूत्र के पनाले बह रहे हैं, क्या तुम्हारी म्युनिसिपल्टी के

हिन्दू मेम्बरों के कान पर जूँ रेंगती है। चाहें तो मलमूत्र को शहर के बाहर भी गिरा सकते हैं। कई शहरों में गंगाजल अब भी इस कष्ट से मुक्त है। पर यह काशी है, जहाँ पण्डे, घाटिया, महन्त, संन्यासी धर्म के ठीकेदार बनकर धर्म के नाम पर पुजवा पुजवाकर मोटे मुस्टंड हुए जा रहे हैं। यह मत समझना कि मैं बाँभन हूँ तो बाभनों को निन्दा न करूँगा। नहीं, मैं बुड्ढा होते हुए भी कितनी ही नवीन बातों से सहमत हूँ। घाटों पर पेशाबखाने बने हैं। जो लोग नहा-नहाकर लौटते हैं, तो मेहतरों के झाड़ू से उड़ती हुई धूल उनका स्वागत करती है। इससे नगरनिवासियों का स्वास्थ्य चौपट होगा या सुधरेगा। मक्खन, दही, घी कहाँ मिल रहा है? युवकों को देखो, घी दूध हजम न होगा पर चाय, बिस्कुट और अण्ट सण्ट भले खा लेते हैं!

व्यासजी की बात सबको जँच रही थी। सब समर्थन में सिर हिला रहे थे। व्यासजी कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—मैं शायद कुछ कड़वी बाते कह गया। पर सच बात सदा कड़वी ही हुआ करती है। अच्छा, अब मैं आप लोगों के मन लायक कृष्णजन्म की कथा कहता हूँ। मेरे एक सम्बन्धी कविजी ने एक नई भागवत लिखी है। मै उसी की बाते सुनाता हूँ।

श्रोताओं ने उत्सुकता से कहा—वह क्या है व्यासजी, सुनाइए न।

लो भाई सुनो न। यह नयी भागवत छपने ही वाली है। इसमें की कई बाते तो मैं भी नहीं समझता, पढ़ देता हूँ। सुन लो—

'महाराज नन्द के पुत्र उत्पन्न होने की बात सुनते ही पत्र-प्रतिनिधियों का उनके द्वार पर जमघट लग गया!' कहो भइया इ पत्र-प्रतिनिधि कौन होते हैं?

आप नहीं जानते व्यासजी। इ जो अखबार निकलते हैं उन्हीं के ये दल्लाल होते हैं जो रोज नयी-नयी खबरें बटोरा करते

हैं। अगर खबर न बटोरें तो अखबार चले कहाँ से। ई लोगन के अखबार बिकने पर दो आना रुपया दलाली मिलती है। अच्छा आप पढ़ते जाइए हम लोग स्वयं समझ लेंगे।

व्यासजी ने फिर पढ़ना प्रारम्भ किया—पत्र-प्रतिनिधियों को महाराज नन्द ने चाय पिलाई। उस दिन सभी पत्रों के मुखपृष्ठों पर महाराज नन्द और महारानी यशोदा के ब्लॉक छापे गए। हिन्दू-सेवासंघ, नगर कांग्रेस कमेटी, वनिता-आश्रम, कन्या पाठशाला और हरिजन-समिति को क्रम से १०१), ५०००), २००१) २०६१) और ५०) रु० चन्दा में मिले। महाराज के पास बधाई के अनेक तार आये जिनमें महाराज अयोध्या, महाराज नेपाल, महाराज मिथिला, तथा महाराज बुन्देलखण्ड के प्राइवेट सेक्रेटरी के भी थे।

नामकरण-संस्कार के दिन महाराज ने अपने बगीचे में एक कवि-सम्मेलन किया। दूसरे दिन पहलवानों का दंगल, तीसरे दिन शेर और हाथी की लड़ाई का प्रोग्राम था। बालक कृष्ण के लिए एक गार्जियन और एक दाई के लिए विज्ञापन छपवाया गया। कई प्रार्थना-पत्र आये पर स्वर्गलोक की कोई किन्नरी जिसके लिए महाराज इन्द्र ने शिफारिस की थी इस पद पर नियुक्त हुई।

व्यासजी अभी और सुनाते, पर इतने में पानी बरसने लगा, और उन्होंने दूसरे दिन सुनाने का वचन देकर कथा समाप्त की।

पड़ोसी का प्रेम

छोटे-मोटे गाँवों के रहनेवालों की बात मैं नहीं कहता। वहाँ तो कुछ और ही ढग के लोग रहते हैं। मिसिरपूरा में रहनेवाले घुरहू तिवारी के घर में आज सवेरे रोटी बनी थी या मालपूए छने थे, इसका वृत्तान्त ठकुरान के निवासी मुशी चिरकुटलाल को भली भाँति मालूम है। चौधरी खेलावनसिंह के पुत्र ने कल अपनी पत्नी को पीटा था यह बात गाँव के अन्दर बिना रेडियो या अमृतबाजार-पत्रिका के प्रतिनिधि के भी फैल गई और कल दोपहर से ही प्रत्येक घर के अन्दर युवतियाँ चौधरी साहब के स्वनाम-धन्य पुत्र हुरपेटनसिंह के उस कार्य्य पर टीका टिप्पणियाँ कर रही हैं। वृद्धाएँ तो उस सम्बन्ध में कुछ असन्तुष्ट नहीं दिखाई पड़तीं। वे तो एक प्रकार से प्रसन्न ही हैं। अस्तु।

पर नगरों की दशा इससे एकदम विपरीत है। बाबू अनोखेलाल को सत्रह दिन से कारबकल हुआ है और डाक्टर बड़बोले राव उन्हें जवाब दे चुके हैं इसका पता उनके बैठकखाने के ठीक नीचे की दूकान में रहनेवाले किरायेदार चटोरेमल लुटेरेदास ब्रदर्स क्लाथ मर्चेण्ट को अब तक नहीं है। मुशी दिलसुखराम के बूढ़े पिता को रात भर खाँसी आती है पर उनके पड़ोसी के मकान में ग्रामोफोन इतने उच्चस्वर से 'चल चल रे नौजवान' की ललकार सुनाता है कि बेचारे की खाँसी को दबना ही पड़ता है। पण्डित मनोहर दूबे के यहाँ दो दिन से अन्न के अभाव के कारण चूल्हा नहीं जल रहा है, पर बगल के मकान में 'जन-रक्षक संघ' के सभापति की ओर से प्रसिद्ध गायक अफरीदी खाँ को चाय-पार्टी दी जा रही है।

बात यह है कि नगरों के रहनेवाले इतने फालतू नहीं होते कि ऐसी ऐसी साधारण तथा उन बातों के बारे में माथापच्ची करें

जिनसे उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। गाँवों के रहनेवालों को सिवा दूसरों के कामों का पता लगाने के और काम ही कौन सा रहता है। वहाँ न क्लब, न पुस्तकालय और न सिनेमा-गृह ही हैं। परिणाम यह होता है कि उन्हें एक दूसरे का हाल जानने के लिए उत्सुकता हुआ करती है। और दूसरों के विषय में जानने की उत्सुकता का होना अच्छा लक्षण नहीं। इसे सभ्यसमाज की भाषा में अशिष्टता समझा जाता है। हाँ, यह बात और है कि अखबारों के अन्दर आपने पढ़ लिया कि अमेरिका के केलिफोर्निया नगर के व्यापारी मिस्टर राकफर्सन को मोटर-दुर्घटना का शिकार होना पड़ा, या आस्ट्रेलिया के प्रसिद्ध जूते के रोजगारी मिस्टर हैरिस को उनकी पत्नी ने तलाक दे दिया, पर इसे जानने के लिए समय नष्ट करने में क्या तुक है कि आपके मुहल्ले में प्रसिद्ध जौहरी के यहाँ कल चोरी हो गई या आपके नगर में इस सप्ताह ७५ व्यक्ति क्षुधा की ज्वाला से जल मरे। और यदि ऐसी बातें आपको मालूम भी हो जाती हैं तो अखबारों के द्वारा ही !

नगरों के लिए 'अखबार' एक आवश्यक और अपरिहार्य्य वस्तु है। यदि अखबार न हो तो आप यह कैसे जान सकते हैं कि सुप्रसिद्ध नेता श्रद्धेय 'अमुक' जी की मजदूरिन को रात में कै बार छींक आई। आपके मुहल्ले के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ और वैयाकरण वेदान्त-रत्न, एकान्त-वासी और विज्ञापनकला से कोसों दूर रहने वाले पण्डित सुधीश कुमार भट्टाचार्य को महीनों से शारीरिक कष्ट है, इसका समाचार किसी प्रेस रिपोर्टर को आज तक नहीं मिला, पर अफ्रिका के राजदूत की उपपत्नी के खानसामे की बीमारी का हाल तो आपको काशी में बैठे बैठे प्रति दिन मालूम ही होता रहता है !

जब आपको घर बैठे संसारभर का हाल ६ पैसे व्यय करने पर मिल ही जाता है तो स्वयं अपने अड़ोस पड़ोस का हाल

जानने के लिए व्यग्र होना मूर्खता नही तो और क्या है ! मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज से पृथक् उसकी कोई सत्ता नहीं' आदि समाज-शास्त्र सम्बन्धी वाक्यों में भरे उपदेश का पालन आप पटना-कविसम्मेलन, विक्रम जयन्ती और तुर्की-भूकम्प-कोष में चन्दा देकर कर ही लेते हैं, फिर आपको इससे क्या मतलब कि आपका पड़ोसी, ठीक बगल में रहनेवाला छटकू नाई उचित चिकित्सा के अभाव में बम बोल गया। वह तो खैर छटंकू नाई ही था। यदि आपके नगर का कोई पसेरी इतना बड़ा विद्वान् साहित्यिक भी धनाभाव से मर जाता तो उसमे आपका क्या दोष ? कितने ही साहित्यिक इसी प्रकार मर गये। पर उनके मरने के बाद शोक-सभाएं तो की गईं, पुस्तकालय तो बन्द रहे और उनका उचित स्मारक बनाने के लिए चन्दा कमेटियाँ तो बनाई गईं। यह सब क्या कुछ कम काम हुआ और इससे क्या नगर-निवासियों की सामाजिकता का प्रमाण नहीं मिला !

पर छोटे छोटे नगर जो अभी भली भाँति 'नगर' नाम के उपयुक्त अधिकारी नही हो पाये हैं, वहाँ पड़ोस की बातों का भी कुछ कुछ पता रखना लोग अपना कर्तव्य समझते हैं ! हाँ जो बड़े बड़े नगर हैं, जहाँ व्यवसाय, व्यापार, 'फाटका' आदि ही प्रधान है, वहां प्रायः एक दूसरे के कुशल-क्षेम के प्रति उदासीनता ही देखने में आती है। एक ही मुहल्ले वाले व्यक्ति, एक दूसरे को पहिचानते भी नहीं !

× × ×

उन दिनो मुझे नौकरी के सम्बन्ध से बम्बई में रहना पड़ा था। मैं इम्पीरियल बैंक में एकाउण्टेण्ट के पद पर नियुक्त था। मेरी बदली कानपुर से बम्बई को हो गई। वहाँ पार्क लेन में मैंने एक मकान किराये पर लिया। मकान चोमंजिला था। तीसरी मंजिल में सिर्फ उत्तर ओर का ब्लाक मुझे किराये पर मिल सका और

वह भी १५०) रु० महीने किराये पर। कानपुर में तो इतने में एक अच्छा खासा पूरा बंगला मिल सकता है। पर लाचारी थी। बिना एक ब्लाक अपने कब्जे में किये, काम भी न चल सकता था!

मेरे सामनेवाले हिस्से के चार कमरों में कोई पारसी सज्जन रहते थे। जिस दिन मैं इस मकान में आया, उसी दिन सीढ़ियों पर मेरी उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने मुझे घूरा और मैंने उन्हें। फिर जब कभी मैं उनके कमरों की ओर देखता, तो वे निगाह बचा कर सामने से हट जाते थे। वे भी अकेले थे, और मैं भी अकेला ही। वे भी हाल में ही उस मकान में कहीं बाहर से आकर ठहरे हुए थे और यही दशा मेरी भी थी। उनके पास भी एक ही नौकर था और मेरे पास भी एक ही। अपनी पत्नी को अभी मैं भी बम्बई नहीं ले आया था। सोचा था अभी जलवायु का स्वरूप समझ लूँ और अच्छी तरह 'इस्टेब्लिश' हो जाऊँ तो बुलाऊँ। कौन जाने मुझे भी यहाँ का जलवायु अनुकूल न प्रतीत हो। इसी कारण अभी मेरी पत्नी बच्चों के साथ कानपुर में ही थीं। अप्रैल का महीना था। लड़के को वार्षिक परीक्षा भी देनी थी। मैंने सोचा यह सब काम निपट जावे, तो बुलाऊँ। और नहीं तो एक मास की मेडिकल छुट्टी ही लेकर यहाँ से कानपुर लौट जाऊँगा और मन में आया तो कहीं और के लिए बदली करा लूँगा। यदि कानपुर मे ही फिर रह जाना पड़ा, तो इससे बढ़-कर क्या बात थी। वहाँ अनेक व्यक्तियों से मेरी मित्रता हो गई थी। सुशीला को भी कई सहेलियाँ मिल चुकी थीं।

कानपुर में तो दो चार मील पर रहनेवाले व्यक्तियों से भी घनिष्ठता हो चुकी थी, पर यहाँ आये आज तीन सप्ताह से अधिक हो रहे थे, पर अपने कमरे के ठीक सामने तीन गज की दूरी पर रहनेवाले सज्जन से मेरा समागम नहीं हो पाया था। वे पारसी थे और बम्बई के ही निवासी थे और मैं था बाहर का। इसलिए

एक प्रकार से उनका भी अतिथि था पहले उन्हीं को बोलना चाहिए था, पर जब वे ही मौन धारण किए हुए हैं तो मैं क्यों बोलने लगा !

एक दिन ज्योंही मै बाहर से आकर कपड़े बदल रहा था कि मुझे उनकी आवाज सुनाई पड़ी—बाबू ओ बाबू !

मैंने घूमकर देखा और कहा—कहिए क्या आज्ञा है। मुझसे कुछ काम है क्या ?

'जी नहीं, मैं अपने नौकर को बुला रहा था। बाबू उसी का नाम है। कहिए आप आज दफ्तर से जल्दी चले आये ?'

और इसके बाद मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे कमरे में चले गए।

मैं एक महीने तक उस मकान में रहते रहते घबड़ा गया। मुझे चुप्पी साधकर बैठना बड़ा बुरा मालूम होता है। यहाँ सामने एक महाशय थे भी तो एकदम महात्मा बुद्ध-सरीखे। उन्हें मैंने कभी हँसते हुए नहीं देखा। न मालूम दिन भर छुट्टियों में भी, घर के अन्दर क्या किया करते थे ! मैं वहाँ की इस निस्तब्धता से ऊब-सा उठा। और उस मकान को बदलने की सोचने लगा।

मेरा सामान ढोया जा रहा था। बगलवाले मकान में ही मैं जाकर रहने का विचार कर चुका था। पारसी सज्जन ने इसे देखा तो अपने कमरे के बाहर निकले और मुझसे बोले—नमस्कार। क्या आप यह मकान छोड़ रहे हैं ?

मैंने आश्चर्य-सहित उत्तर दिया—जी हाँ, यहाँ कमरों में हवा और रोशनी की ठीक व्यवस्था नहीं है। बगलवाले मकान में अच्छे 'वेण्टिलेटेड' कमरे हैं।

'कौन मकान ? शाह हापुरजी वाले का ? हाँ वह हवादार तो जरूर है। मुझे आपके इस मकान छोड़ने का बड़ा दुःख है।

और मैने अपने मन में कहा कि मुझे इस मकान में रहने का दुःख था ! यदि पहले ही आप वार्तालाप आदि किया करते, तो मुझे इतना सूनापन क्यों लगता !

मैं बोला—यह आपकी महानुभावता है। क्या करूँ मैं न छोड़ता आप ऐसे सज्जन और मिलनसार व्यक्ति का पड़ोस था। पर अब लाचारी है।

नमस्कार करके वे महाशय फिर अपने कमरे में चले गये।

मेरा अभी थोड़ा ही सामान बगलवाले मकान में जा पाया था कि उक्त मकान के मालिक सेठ भीखाभाई का मुनीम मेरे पास आकर बोला—सेठजी आपसे माफी चाहते हैं। उनको लड़की के दामाद का तार आया है। वे एक महीने के लिए यहाँ आ रहे हैं। वे इसी मकान में ठहरेंगे। यदि कोई हर्ज न हो तो एक मास तक आप और रुक जाइए। फिर वह आपको छोड़कर किसी और को किराये पर न दिया जायगा।

मैंने अपने सामान वापस मँगवा लिए। पारसी सज्जन ने जब इसे सुना तो बोले—यह क्या आप नहीं गये। अच्छे मौजी आदमी हैं आप !

मै प्रसन्न हुआ। चलो यह कुछ बोलने चालने तो लगा। पर उस दिन से वह फिर मुझसे नहीं बोले। मै इसके बाद लगभग चार महीनों तक उसी मकान में था, पर एक दिन के लिए भी उससे मुझसे सम्भाषण नहीं हुआ !

मेरी बदली फिर कानपुर के लिए हो गई। मै जब जाने लगा तो स्वयं एक बार उनके कमरे में गया। देखा वे कुछ पढ़ लिख रहे थे। मुझे देखकर वे चौंक पड़े। बोले—कहिए मुझसे कुछ काम है ? मैं इस वक्त कुछ जरूरी काम कर रहा था।

'जी नहीं, आप अपना काम शौक से कीजिए। मै अब बम्बई से ही जा रहा हूँ।

'मुझे इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ कि आप जा रहे हैं। मुझे आपके रहने से बड़ा सुख था। आपके पहले इस मकान मे एक आदमी सपरिवार रहते थे। बड़ा शोर गुल मचा रहता था। पर आप बड़े शान्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। मुझे कभी Disturb नहीं किया। मै इस साल हिस्ट्री में एम-ए० की तैयारी कर रहा हूँ। इसी से कम बातचीत करता हूँ!

पर मुझे भी यह मानना पड़ेगा कि ऐसा किताबी कोडा और चुप्पा पड़ोसी मुझे कभी नही मिला था।

शास्त्रीजी

श्रीमान् पण्डित वृकोदरानन्द जी शास्त्री को आप जानते हैं ? शायद आप नहीं जानते। आप तो क्या, उनके अन्तरंग मित्र तक उन्हें नही जानते। उन्हें जानना क्या कोई सरल काम है। दाल-भात का कौर थोड़े ही है। ऊहँ, यह मुहावरा तो पुराना हो गया। टोस्ट और बटर उड़ाना नहीं है। मैं भी उनका बचपन का मित्र हूँ, परन्तु, तथापि, फिर भी, उन्हें आज तक ठीक ठीक नहीं पहिचान सका। पर जितना, थोड़ा बहुत पहिचान सका हूँ, उसी के आधार पर उनका परिचय लिख रहा हूँ। आशा है कि 'इण्डियन इयर बुक' के अगले संस्करण में, उसके सम्पादक और प्रकाशक इसे छापकर मुझे धन्यवाद देंगे।

धन्यवाद! तो क्या मै केवल धन्यवाद के लालच से ही उनका परिचय लिख रहा हूँ ? जी नहीं, ऐसा समझना मेरे प्रति सरासर अन्याय होगा। और मैं ऐसा मूर्ख भी नही कि केवल धन्यवाद ऐसे सस्ते प्रलोभन के फेर में पड़कर किसी का जीवन-चरित लिखने का कष्ट उठाऊँ। धन्यवाद से अब मेरा पेट काफी

भर चुका है ! बड़े बड़े सम्पादकों ने मुझसे पुरस्कार और पारिश्रमिक का लालच देकर अपने विशेषांक के लिए कविताएँ लिखवाईं। मनीआर्डर की प्रतीक्षा करते करते आँखें थक गईं। पर पूरे तीन सप्ताह के पश्चात् एक एक पोष्टकार्ड पर 'धन्यवाद' लिखकर मेरे पास भेज दिया ! देखा आपने, धन्यवाद वह ब्रह्मास्त्र है जिसकी सहायता से आप बड़े से बड़ा काम करा सकते हैं, या भारी से भारी रकम पचा सकते हैं ! आप अपने मित्रोंको दावत देते हैं। आपकी श्रीमतीजी दिन भर चाय समोसे, दही-बड़े और कचौड़ियाँ किस अथक परिश्रम और लगन से बनाती हैं। आपके मित्र कैसा गपागप माल उड़ाते हैं। पर आपको इन सबसे मिलता क्या है ! धन्यवाद ! इसीसे कहा गया है कि मूर्ख लोग दावत देते हैं और बुद्धिमान् लोग उन्हें आत्मसात करते हैं।

पण्डित वृकोदरानन्द ने अपने जीवन में किसी को कभी दावत दी है या नहीं, इसका पता तो उनके मरने के बाद पुरातत्व विभाग का अनुसन्धित्सु विद्यार्थी-समुदाय लगावेगा। हाँ, मैं इसे सप्रमाण और दावे के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने अपनी अब तक की पचपन वर्ष की अवस्था में कम से कम पचपन सौ से अधिक दावतों में भाग लिया होगा। शायद इस संख्या से भी कुछ अधिक में ही। उन्होंने 'धन्यवाद' भी दिया है और उसके पर्य्यायवाची शब्दों, जैसा 'स्वस्ति', 'कल्याण हो', 'प्रसन्न रहिए' 'आपके यहां धनधान्य की वृद्धि हो' 'आपको पुत्र हो' आपका पोता बढ़े' 'आप दूधों नहावें और पूतों फलें' ईश्वर करे कि बारम्बार ऐसे मांगलिक अवसर आपको प्राप्त हों' का भी धुँआधार प्रयोग किया है। वह तो मानना ही होगा कि शुष्क 'धन्यवाद' से उसके ये पर्य्यावाची कहीं अधिक आह्लाददायक और प्रभावशाली होते हैं, जिसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि उन भले आदमियों, अर्थात् भोजन करानेवाले महानुभावों के यहाँ उनका

पुनः पदार्पण अवश्य होता है, चाहे केवल धन्यवाद देनेवालों का फिर प्रवेश हो या न हो।

छट्ठी से लेकर छमसी, बरही से लेकर बरसी तक सभी प्रकार के दावतों में पण्डित वृकोदरानन्द की प्रथम पूजा होती है। जिस दावत और निमन्त्रण, प्रीतिभोज, ब्रह्मभोज, श्राद्ध या सालगिरह में आप नहीं पहुँचते वहाँ की शोभा अधूरी ही रहती है। एक एक दिन में पचीस-पचीस निमन्त्रणों का कार्य-सचालन करना आप ही सरीखे निमन्त्रण-महारथी का काम है। कभी-कभी तो आपको विवशता भी प्रकट करनी पड़ती है। इसीसे आपकी लोक-प्रियता का परिचय—सूक्ष्म परिचय—प्राप्त हो सकता है। कुछ लोग आपकी तीव्र जठराग्नि से अनुचित ईर्ष्या भी करते देखे जाते हैं। पर सोहागिन का सिंदूर देखकर विधवा का लिलार फोड़ना कहाँ तक ठीक है! यहाँ मैं उन विधवाओं की बात नहीं कहता जो एक ही जन्म में अट्ठारह बार सोहागिन होकर वास्तविक सोहागिनों की भी नाक काटने में समर्थ हैं। इस प्रकार की अखण्ड सुहागिनियाँ तो यमराज को भी उट्ठी बुला सकती हैं। इनकी तो बात ही अलग है।

जिन लोगों को साबूदाना भी हजम नहीं होता, या जिन्हें मलाई कब्ज करती है, या जो दो-एक लँगड़ा आम इस भय से नहीं खा सकते कि संग्रहणी हो जायगी, उन्हें एक बार पण्डित वृकोदरानन्द से अपनी हस्तरेखा दिखवानी चाहिए। शास्त्रीजी हस्तरेखा देखकर अवश्य बता देंगे कि ऐसे लोग किसी यमघण्ट-योग में उत्पन्न हुए हैं, या इन्होंने पूर्वजन्म में किसी ब्राह्मण या इष्ट-मित्र को भोजन नहीं कराया है। केवल इतना ही नहीं, शास्त्री-जी उन्हें ऐसे-ऐसे नुस्खे भी बता देंगे जिससे उनकी घरवालियों-का दिन भर जलपान बनाते बनाते ही कचूमर निकल जायगा।

शास्त्रीजी मिर्जापुर के जिस स्वनामधन्य मुहल्ले को अपनी

पदरज से पवित्र किया करते हैं, उसी में एक अखाड़ा भी है। इसलिए शास्त्रीजी भी प्रतिदिन सवेरे पाँच बजे वहाँ पहुँच कर व्यायाम-शास्त्र का सम्यक् अभ्यास करते हैं। आप प्रायः कहा करते हैं कि सब शास्त्र एक ओर और व्यायाम-शास्त्र तथा पाक-शास्त्र एक ओर! कुश्ती के कितने दाँव-पेंच हो सकते हैं इसपर जैसा सारगर्भित भाषण शास्त्रीजी दे सकते हैं, वैसा भाषण डाक्टर राधाकृष्णन् हिन्दू-दर्शनों की प्राचीनता के विषय में शायद ही दे सकें। भात के कितने भेद होते हैं, खिचड़ी के सहकारी कितने द्रव्य होते हैं, पापड़ के पचहत्तर प्रकारों में कौन सबसे अधिक उपादेय है, तथा रायता में कितनी लालमिर्चें पड़नी चाहिएँ, इसका विवेचन जिस अधिकार के साथ शास्त्रीजी करते हैं, उस अधिकार के साथ ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मिस्टर चर्चिल अपने देश की युद्धोद्योग-समस्या पर प्रकाश नहीं डाल सकते! शास्त्रीजी ने इन दोनों विषयों में जितनी दक्षता प्राप्त की है उतनी दक्षता आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय ने विज्ञान में यदि पाई होती तो उनका यश न मालूम और कितना अधिक हुआ होता! पण्डित वृकोदरानन्दजी अपनी इसी दक्षता के कारण अपने को 'शास्त्री' कहते हैं, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज या पंजाब विश्व-विद्यालय की किसी साधारण परीक्षा की बदौलत नहीं। यद्यपि जो लोग उन्हें नहीं जानते, अर्थात् अच्छी तरह नहीं जानते, उनका अनुमान है कि वे काशी या पटना के ही शास्त्रियों के समान कोई मामूली शास्त्री होंगे।

पंडितजी का कथन है कि विद्वान् तीन प्रकार के होते हैं। विद्यया, वपुषा और वाचा। अर्थात् विद्याध्ययन के कारण, डील-डौल से तथा बोलने की कला की बदौलत! उनकी राय में इन तीनों प्रकार के विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ वही है जो डीलडौल से विद्वान् मालूम पड़े! अर्थात् यह द्वितीय नम्बर का विद्वान् ही

अद्वितीय हो सकता है ! जिसके दर्शन मात्र से ही तमाम शास्त्र-विषयक सन्देह पलायन न कर जायँ, वह भी कोई विद्वान् है ! बड़े-बड़े विद्वान् तमाम ग्रन्थ चाटकर भी बोल नहीं सकते, नवोढ़ा बधू की भाँति उनकी जिह्वा अधरों का अवगुण्ठन हटाना नहीं जानती। सारे के सारे शास्त्र ऐसे विद्वानों के पेट में ही गलपच और सड़ जाते हैं। मुचड्डू की तरह ऐसे विद्वान् का कोई विद्वान् कैसे माने ? कम-से-कम वृकोदरानन्दजी तो ऐसे विद्वान् को शिष्य भी स्वीकार करने में अपना घोर अपमान समझते हैं। उनकी सम्मति में विद्वान् वही है जो शास्त्र के अतिरिक्त शस्त्र-से भी काम ले सके। जो सभा में ललकार कर बोल ही नहीं सकता, जिसकी शरीर-सम्पत्ति ही सिमटते सिमटते भारतीय देशी राज्यों के अधिकारों के समान क्षीण हो गई है, जो तीन पाव पेड़ा भी आधसेर दही में सानकर उदरस्थ नहीं कर सकता, जिसे देखते ही लोग आतंकयुक्त हो पालागन न करें ....!

हाँ, तो पंडित वृकोदरानन्द की सम्मति में ऐसा व्यक्ति पंडित-कुल-कलंक है ! शास्त्र पढ़ने से अच्छा था कि वह कचालू गुलगप्पे का खुमचा लेकर दशाश्वमेध घाट पर घूमा करता ! पंडितजी व्यायामकला को ६५वीं कला, पाकशास्त्र को सातवाँ शास्त्र और भोजन के पचाने की विद्या को पन्द्रहवीं महाविद्या मानते हैं !

जगद्गुरु शंकराचार्य दुबले-पतले थे या भारी भरकम, इसका तो मुझे ठीक पता नहीं, पर यह ऐतिहासिक तथ्य है कि उनके पांडित्य के आगे भारतवर्ष के तमाम बौद्धों ने सिर झुकाकर अपने अवैदिक बौद्धधर्म का परित्याग कर दिया। इतिहासकारों का मत है कि उन्होंने अपनी विद्वत्ता के बल पर ही दिग्विजय करके सनातन-धर्म की पताका देश भर में फिर से फहराई और बौद्ध तथा जैन-धर्म को उखाड़ फेंका। उनमें वाणी-बल भी अवश्य रहा होगा। सम्भव है कि वे शरीर से भी हृष्ट-पुष्ट रहे हों, पर

बाजार में उनके जो चित्र बिकते हैं, उसके अनुसार तो उन्हें 'वपुषा' कोटि का विद्वान् मानने को जी नहीं चाहता। श्रीवृकोदरानन्दजी प्रातःस्मरणीय स्वामी शंकराचार्य की कोटि के विद्वान् नहीं हैं, इस बात को तो मैं निर्भय होकर उनके मुँह पर कह सकता हूँ, चाहे इसका जो भी परिणाम हो, पर यह बात अवश्य है कि वे भी देश तथा धर्म की सेवा कम नहीं कर रहे हैं। मिर्जापुर के कितने ही नास्तिक तथा अन्य नवागत सम्प्रदायों के अनुयायी आज वैदिक धर्म के जो पूर्ण अनुयायी दिखाई पड़ते हैं, वह केवल वृकोदरानन्दजी के ही आतंक के कारण! पंडितजी का कथन है कि मैं उन दण्डी संन्यासियों को अपना आदर्श नहीं मानता, कम-से-कम धर्मशास्त्र के विषय में! पलास या बेल के दण्ड के स्थान में पण्डित नामधारी को 'लट्ठ' धारण करना चाहिए। बिना लट्ठ लट्ठा के नास्तिक लोग इस युग में आस्तिक नहीं बन सकते। वे जब कभी किसी व्यक्ति को सिर से दो अंगुल ऊँची लाठी लिये देखते हैं तो उनका कलेजा मारे प्रसन्नता के उछलने लगता है! उस समय वे गले तक भोजन कर चुके रहने पर भी आध सेर तीन पाव भोजन और कर सकते हैं! जब वे किसी दुबले-पतले वकील, डाक्टर या प्रोफेसर को देखते हैं तो उस दिन ग्लानि वश उनका चित्त बहुत खिन्न रहता है रात में अन्न एकदम ग्रहण नहीं करते, केवल औटाया हुआ तीन चार सेर दूध पीकर ही सो रहते हैं! भारतीय युवकों के शारीरिक बल का यह खेदजनक ह्रास जितना उन्हें खलता है, उतना शायद ही किसी भारतीय नेता को खलता होगा!

एक बार शास्त्री जी को सौभाग्य या दुर्भाग्य से किसी क्लब में 'हाकी मैच' देखने जाना पड़ा! उन्होंने देखा दोनों टीमों के खिलाड़ी 'गोल' करने के लिए इधर से उधर दौड़ रहे हैं। गेंद कभी इस गोल पोष्ट के पास लाया जा रहा था कभी उस गोल

पोष्ट की ओर। शास्त्रीजी कुछ देर तक तो यह क्रीड़ा देखते रहे— फिर एकाएक अपने बगल में खडे हुए एक व्यक्ति से पूछ ही बैठे—क्यों भाई, यह कौनसा अमूल्य पदार्थ है जिसके पीछे इतने पढ़े-लिखे आदमी दौड़ रहे हैं! क्या सबके पास वैसा एक-एक पदार्थ नहीं है! जब उन्हें पता लगा कि वह लकड़ी का गेंद है जिसका दाम रुपये बारह आने से अधिक नहीं है, तो वे बड़े चकराये। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि वे सब खिलाड़ी अपने होशहवास में हैं। दस बारह आने की चोज के लिए इस प्रकार इतने भले आदमियों का मारपीट करना उन्हें बड़ा ही आश्चर्य-जनक प्रतीत हुआ। उन्हें उस व्यक्ति ने लाख समझाया कि वे लोग गेंद हथियाने के लिए दौड़-धूप नहीं कर रहे हैं, वरन् यह एक प्रकार का खेल है, जिसमें 'गोलपोस्ट' के अन्दर 'गेंद को पहुँचाना ही उनका लक्ष्य है, पर शास्त्रीजी को विश्वास ही नहीं हुआ! उन्होंने उसे डपटकर कहा—देखो बेटा! मैं तुम्हारे फूफा की अवस्था का हूँ। मुझसे मजाक करोगे तो अच्छा न होगा— आजकल के छोकरे जिससे देखो मजाक कर बैठते हैं। साफ तो दिखाई पड़ रहा है कि उस गेंद-सेंद या जो कुछ भी नाम हो उस निकृष्ट पदार्थ का, उसको प्राप्ति के लिए वे सब व्यर्थ का झगड़ा कर रहे हैं, और तुम 'गोल पोष्ट' फोलपोष्ट कहकर मुझे बेवकूफ बना रहे हो! हो नहीं सकता कि वह पदार्थ केवल रुपये बारह आने का हो। और यदि इतना सस्ता है तो उसके लिए इस प्रकार चिल्ला-चिल्ला कर दौड़ना विशुद्ध पागलपन है! कहीं हजार पाँच सौ की चीज होती तो न मालूम ये सब क्या करते। तुम लोग भी तमाशबीनों की तरह खड़े हो, यह नहीं होता कि समझा बुझाकर इन लोगों को इस पागलपन से रोकते।' पर जब दर्शकों पर शास्त्री जी के इस व्याख्यान का कुछ भी प्रभाव न पड़ा और वे उल्टे मुँह फेर फेरकर मुस्कराने लगे, तो शास्त्रीजी स्वयं डण्डा

फटकारते बीच फील्ड में जा पहुँचे और जो ही खिलाड़ी सामने पड़े, उन्हें किसी को कनेठी, किसी को थप्पड़ देकर ऐसा धक्का दिया कि बस पूछिए ! खेल स्थगित हो गया ! क्लब के सदस्यों और छात्रों तथा अध्यापकों मे से कई एक शास्त्रीजी को पहिचानते थे ! उन्होंने उन्हें प्रणाम करके जब उनके इस आकस्मिक क्रोध का कारण पूछा तो शास्त्रीजी ने उन्हें एक तुच्छ वस्तु के लिए लड़ने पर बहुत भला-बुरा कहा ! शास्त्रीजी के व्याख्यान को सुनकर खिलाड़ियों का क्रोध हवा हो गया ! वे सब अट्टहास करने लगे और जब शास्त्रीजी को अपनी भूल मालूम हुई तो वे भी अट्टहास कर उठे किन्तु इस घटना के बाद वे किसी अंग्रेजी खेल के दर्शक रूप में नहीं दृष्टिगोचर हुए ! मुझसे उन्होंने एक दिन अवश्य कहा था—वाह रे व्यायाम ! दण्ड बैठक जोड़ी मुग्दर को तो रख दिया ताख पर, लगे उछलने एक गेंद के पीछे ! भाई, मै तो इसे व्यायाम नहीं मान सकता, चाहे तुम कुछ भो कहो !

शास्त्रीजी को एक बार अपने किसी यजमान के साथ काश्मीर और अमरनाथ जाना पड़ा ! उनके यजमान तो लौट आये, पर शास्त्रीजी का मन वहाँ कुछ ऐसा रमा कि वे वहाँ कुछ अधिक समय तक ठहर गये । एक बार वे काश्मीर के उद्यानों की हवा और मेवा का यथेष्ट सेवन करके जब सन्ध्या समय डेरे पर लौट रहे थे तो सुना कि नगर में साम्प्रदायिक उपद्रव का आरम्भ हो गया है । शास्त्रीजी को यह सवाद बड़ा ही सुखकर प्रतीत हुआ ! यहाँ आकर उनके 'व्यायाम' के अभ्यास मे कुछ शिथिलता आ गई थी और वे पूरे 'साधु-सन्त' ही बने जा रहे थे ! इतने दिनों बाद उन्हें अपनी शास्त्रज्ञता दिखाने का अच्छा अवसर मिला ! वे यह सब सोचते हुए अपनी लाठी को जिसे वे अमरकोष में भी न मिलनेवाले कई विशेषणों, जैसे 'लट्ठ निरञ्जन' 'भुरकसकरण' 'चपेटाचरण' 'दैत्य-मुण्ड-फोड़न' 'नीचता-

निवारण' 'खलखण्डन' 'लण्ठ-लोटन' या 'लण्ठ-लुण्ठन', 'दुःख-भञ्जन', पाजी-प्रताड़न' 'उजबक-उखाड़न', बुरबक-विदारण' 'लम्पट-लथाड़न' और वृकोदरानन्दवर्धन' से सम्बोधित करते थे, कन्धे पर रखे धीरे धीरे चले जा रहे थे कि, तीस-चालीस गुण्डों ने, जिनमें से कई के पास तलवारें गँडासे तथा छूरे भी थे, पण्डितजी की ओर दौड़े और 'मारो साले को' कहते हुए उन्हें मारने को एकदम ही उद्यत होकर उन्हें घेरने को दौड़े।

शास्त्रीजी ने चिल्लाकर कहा—भाइयो, मुझे मारकर क्या पाओगे? मैंने तो कोई उपद्रव किया नहीं है! मैं तो इस देशी रियासत में अभी आठ ही दस दिन हुए आया हूँ। मैं तो अंगरेजी बादशाह की अमलदारी का रहनेवाला एक भला आदमी हूँ। मैं झगड़ा-फसाद क्या जानूँ! यदि आपलोग मुझे मार डालेंगे तो मिर्जापुर में मेरी चौबाइन विधवा हो जायँगी, वह चौबाइन जिनका मैं एकलौता पति हूँ!

गुण्डों पर शास्त्रीजी के इस कथन का प्रभाव नहीं पड़ा! अर्थात् उन्होंने इस बात पर कुछ भी विचार नहीं किया कि चौबाइनजी के इकलौते पति के मरने के बाद चौबाइन विधवा होंगी, या सधवा! चौबेजी की गिड़गिड़ाहट पर उन्होंने कुछ भी ध्यान न दिया। ये सब उनका बलिदान करने को एकदम प्रस्तुत हो गये। चौबेजी ने कहा—जब आपलोगों की यही इच्छा है, तो मैं विवश हूँ! ऐसा कहकर उन्होंने शीघ्रता से अपने 'लम्पट-लथाड़न' को हाथ में लेकर दाहिने-बाएं घुमाना प्रारम्भ किया। आठ-दस गुण्डों के सिर से कई 'रक्तबीज' निकले, पर 'जय दुर्गे' का उच्चारण करते हुए शास्त्रीजी ने वह कमाल दिखाया कि मिनटों में मैदान साफ हो गया।

मिर्जापुर में न मालूम कैसे शास्त्रीजी के आगमन के पूर्व ही इस घटना का समाचार पहुँच चुका था! चौबाइनजी ने उनके

पड़ता है कि ऐसे ही लोग 'पाठक' शब्द के एकमात्र अधिकारी हैं।

आज ये लोग साप्ताहिक संसार पढ़ रहे थे। आज बाबू जयकिसनदास को पढ़ने की पारी थी। वे उच्चस्वर से अपनी ड्यूटी बजा रहे थे और श्रोता लोग ध्यानावस्थित होकर उसके भावों पर गौर कर रहे थे।

बाबू जयकिसुनदास पढ़ रहे थे। सामयिक विचार—ब्रिटेन अमेरिका और हम! लेखक—'मुनीश्वर'! अमेरिका और ब्रिटेन दोनों प्रधानतः बनियाँ तथा साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं। भाषा, संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से भी दोनों न्यूनाधिक एक ही हैं।

झगड़ू तेली ने तुरन्त ही रोका—यह क्या गलत सलत लिखले हव। अमेरिका और ब्रिटेन में बनियाँ कहाँ बाटन। क हो बाबू साहब बनिया त सिरिफ एही देसवा में न बाटन। अमेरिका अउर बिरटेन में त सब ईसाइयै न हउवन।

उदासीरामजी भी बोल उठे—और संस्कृत भाषा के बारे में भी तो झूठ ही लिखता है। संस्कृत इन देशों में कहाँ है! सिर्फ काशी, प्रयागराज, और हृषीकेश तथा कुछ-कुछ मद्रास और पूना में सस्कृत अवश्य करके है। पर ई बिलाइत में संस्कृत फस्कृत की कौन चर्चा! एही से तो कहित है कि दैनिक अखबार की खबर ठीक रहित है। साप्ताहिक में तो बेमतलब की, झूठी-सची कहानी सहानी भरके पैसा ठग लेथैं।

अस्तु, कुछ देर तक निबन्ध पढ़ा गया। उसके बाद एक अतुकान्त कविता छपी हुई मिली। कविता यह थी—

मेरे बचपन!
तुम मधुर महान्
कहाँ गये तज मुझको प्रिय हे
आज खिन्न हूँ
चिन्ताओं का

भार वहन करता हूँ !

प्रिय हे ! बिना तुम्हारे प्रिय हे !!

'इ का चीज हौ हो' हुक्के की नली को मुँह से हटाते हुए घूरे साव ने पूछा—कउनो का लड़िका हेरायल हव का । आज-कल लड़िका बड़ा हेरात हउवन ! कौनो लकड़ सुँघवा सारे क-काम जनाला । बेचारा बड़ा दुखी मालूम पडत हव । कुछ इनाम उनाम भी छपवउले हव की नाहीं ।

बाबू जयकिसुनदास ने हँसते हुए कहा—लड़का नाहीं हेरायल हौ, ई कविता छपल हौ ।

'कविता का हाला गुरू ?' घसीटे तमोली ने पूछा ।

'अरे कवित्तबाजो समझलऽन । ओही के पढ़ल-लिखल लोग कविता कहलऽन ।

'हाँ हाँ कवित्तबाजो काहे न समझी ला । अबहीं परियार साल ऊ कौन स्कूल हव हो, कमच्छा पर, ओही में कवित्तबाजी भयल रहल । हमहूँ आपन दूकान उहाँ लगउले रहली । बड़ा अनन्द आयल रहल । बड़े बडे कवित्तबाज आयल रहलन । कउनो मुछमुण्डा रहलन निरे मेहरारुन मतिन, त कउनो के बड़ा बडा झोंटा रहल । रातभर सब कवित्तबाजी कइलन । सवेरे चार बजे त कहीं सब पटइलन । और पान खूब कचरलन । हम त कुछ जादे समझली नाहीं, पर जब सब वाह वाह करब सुरू करें त हमहूँ जोर जोर से वाह वाह करी । पन्द्रहै बीस मिनट तक हम देखही पउली । दूकान पर टगरिया के बैठाय के त भीतर जाये पउली !

'हाँ हाँ, हमहूँ त रहली । ऊ सब कवित्तवन बड़ा उछरत रह-लन । बिना उछरले कवित्तबाजो नाहीं सुनाय सकत रहलन का । एकठे मेहररुओ कवित्तबाजी करत रहल । 'मगर राजा, ओम्मे गीत सुनै क भी बहार आयल रहल ! दू चार मिला त अइसन गावत रहैं, निरफुल रण्डिन के तरे, कि तबियत खुश होय गइल ।

सकुशल आगमन के उपलक्ष्य में श्री सत्यनारायण की कथा सुनी। जीवन में पहले-पहल चौबाइनजी की उदारता के कारण यह समारोह हुआ और पहले-पहल ही मैंने तीस साल की मित्रता की लम्बी अवधि में उनके यहाँ प्रसाद खाकर पानी पिया! बोलिए प्रेम से श्रीवृकोदरानन्द शास्त्री की जय!

पत्रों के पाठक

'का हो घूरे! देखलऽ, ई का लिखऽथव! ई लिखले हव कि जिन्ना महात्मा गांधी से मिलै के तयारै नहिनी होत! कऽहो भला महातमाजी से मिलै मैं ई नखरातिल्ला कौने काम क!

'हाँ राजा देखत त बाटऽ! कोई सरवा त महातमाजी क दरसन करे बदे हजार पाँच सौ रुपिया खरच करलऽ अउर तउनो पर दरसन नसीब नाहीं होत अउर ई तवन एतना सिपारस करवावत बाटन!

कोदई की चौको मुहल्ले में भड़भूजे की दूकान पर बैठे हुए मुहल्ले के कुछ तेली, तमोली और भड़भूजे 'संसार' अखबार के समाचारों पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। सन्ध्या के ६ बजे नित्य ही इस दूकान का मालिक घूरेसाव अखबार की एक प्रति खरीदता था और उसे उसका पड़ोसी घसीटे तमोली बाँच कर सबको सुनाया करता था। बीच-बीच में ये सब व्यक्ति समाचारों पर अपनी स्वतन्त्र टीका-टिप्पणी भी किया करते थे। कभी-कभी इस दूकान पर मुहल्ले के जयकिसुनदास पेड़ावाले, मुंशी चिरकुट लाल दफ्तरी और पण्डित उदासीराम घाटिया भी आ जाया करते थे। जिस दिन ये तीनों महानुभाव जुट जाते थे उस दिन वह दूकान एक छोटे-मोटे क्लब में परिणत हो जाया करती थी।

यों तो अपने को सभी समाचारपत्रों के पाठक बना करते हैं। पर उन्हें पाठक न कहना ही अच्छा है। वे लोग केवल इधर-उधर के शीर्षक देखकर अखबार एक ओर रख दिया करते हैं। बहुत से व्यापारी केवल व्यापार भाव देखने के लिए ही अखबार खरीदते हैं। कुछ लोग नौकरी या विवाह के विज्ञापन के लिए ही दो आने देकर लीडर खरीदते हैं। बाकी समाचार से उनसे कोई सरोकार ही नहीं। कुछ लोग अंग्रेजी की योग्यता बढ़ाने के विचार से ही दो आने पैसों का बलिदान करते हैं। कुछ साहित्यिक व्यक्ति अखबार तभी खरीदते हैं, जब उसमें उनकी कोई कविता छपी रहती है। इसलिए इस प्रकार के पाठकों को हम 'पाठक' की कोटि में रखने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं। हमारे इस 'भँड़भूजा क्लब के सदस्य अखबार के नियमित पाठक हैं। जैसे सन्ध्यावन्दन या नमाज धार्मिक हिन्दू-मुसलमान लोग नियम से करना अपना धर्म समझते हैं, जैसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता प्रतिदिन कुछ चन्दा एकत्र करना आवश्यक समझते हैं, जैसे कालेजों के छात्र सिनेमा देखने में नागा नहीं करते, उसी प्रकार हमारे ये भड़भूजा, तेली तमोली, आदि भाई बिना नागा अखबार बाँचते हैं। यह नहीं कि कोई सनसनीदार खबर छपने पर ही एकाध रोज अखबार खरीद कर पढ़ लिया और फिर मिट्टी के तेल के अभाव में उससे आग सुलगाने का काम ले लिया। यह बात और है कि इस क्लब का अखबार भी पढ़ लिये जाने के बाद दाना या मसाला बाँधने के ही काम में आता था, उसकी कोई फाइल बँधवाकर नहीं रक्खी जाती थी, फिर भी उसका पूर्ण उपयोग कर लिया जाता है। ये लोग अखबार को चाहे वह दैनिक हो या साप्ताहिक, आदि से अन्त तक पढ़ते थे यहाँ तक कि दवाओं के विज्ञापन तक पढ़े जाते थे और उनमें विचार-विनिमय हुआ करता था। इसी से हमें बाध्य होकर कहना

पड़ता है कि ऐसे ही लोग 'पाठक' शब्द के एकमात्र अधिकारी हैं।

आज ये लोग साप्ताहिक संसार पढ़ रहे थे। आज बाबू जयकिसनदास को पढ़ने की पारी थी। वे उच्चस्वर से अपनी ड्यूटी बजा रहे थे और श्रोता लोग ध्यानावस्थित होकर उसके भावों पर गौर कर रहे थे।

बाबू जयकिसुनदास पढ़ रहे थे। सामयिक विचार—ब्रिटेन अमेरिका और हम ! लेखक—'मुनीश्वर' ! अमेरिका और ब्रिटेन दोनों प्रधानतः बनियाँ तथा साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं। भाषा, सस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से भी दोनों न्यूनाधिक एक ही हैं।

झगड़ू तेली ने तुरन्त ही रोका—यह क्या गलत सलत लिखले हव। अमेरिका और ब्रिटेन मे बनियाँ कहाँ बाटन। क हो बाबू साहब बनिया त सिरिफ एही देसवा में न बाटन। अमेरिका अउर बिरटेन में त सब ईसाइयै न हउवन।

उदासीरामजी भी बोल उठे—और संस्कृत भाषा के बारे में भी तो झूठ ही लिखता है। संस्कृत इन देशों में कहाँ है ! सिर्फ काशी, प्रयागराज, और हृषीकेश तथा कुछ-कुछ मद्रास और पूना में सस्कृत अवश्य करके है। पर ई बिलाइत में संस्कृत फम्कृत की कौन चर्चा ! एही से तो कहित है कि दैनिक अखबार की खबर ठीक रहित है। साप्ताहिक में तो बेमतलब की, झूठी-सची कहानी सहानी भरके पैसा ठग लेथैं।

अस्तु, कुछ देर तक निबन्ध पढ़ा गया। उसके बाद एक अतुकान्त कविता छपी हुई मिली। कविता यह थी—

मेरे बचपन !
तुम मधुर महान्
कहाँ गये तज मुझको प्रिय हे
आज खिन्न हूँ
चिन्ताओं का

भार वहन करता हूँ !

प्रिय हे ! बिना तुम्हारे प्रिय हे !!

'इ का चीज हौ हो' हुक्के की नली को मुँह से हटाते हुए घूरे साव ने पूछा—कउनो का लड़िका हेरायल हव का। आज-कल लड़िका बड़ा हेरात हउवन ! कौनो लकड़ सुँघवा सारे क-काम जनाला। बेचारा बड़ा दुखी मालूम पड़त हव। कुछ इनाम उनाम भी छपवउलै हव की नाहीं।

बाबू जयकिसुनदास ने हँसते हुए कहा—लड़का नाहीं हेरायल हौ, ई कविता छपल हौ।

'कविता का हाला गुरू ?' घसीटे तमोली ने पूछा।

'अरे कवित्तबाजो समझलऽन। ओही के पढ़ल-लिखल लोग कविता कहलऽन।

'हाँ हाँ कवित्तबाजो काहे न समझी ला। अबहीं परियार साल ऊ कौन स्कूल हव हो; कमच्छा पर, ओही में कवित्तबाजी भयल रहल। हमहूँ आपन दूकान उहाँ लगउले रहली। बड़ा अनन्द आयल रहल। बड़े बड़े कवित्तबाज आयल रहलन। कउनो मुछमुण्डा रहलन निरे मेहरारून मतिन, त कउनो के बड़ा बडा झोंटा रहल। रातभर सब कवित्तबाजी कइलन। सवेरे चार बजे त कहीं सब पटइलन। और पान खूब कचरलन। हम त कुछ जादे समझली नाहीं, पर जब सब वाह वाह करब सुरू करैं त हमहूँ जोर जोर से वाह वाह करी। पन्द्रहै बीस मिनट तक हम देखही पउली। दूकान पर टगरिया के बैठाय के त भीतर जाये पउली !

'हाँ हाँ, हमहूँ त रहली। ऊ सब कवित्तवन बड़ा उछरत रह-लन। बिना उछरले कवित्तबाजो नाहीं सुनाय सकत रहलन का। एकठे मेहररुओ कवित्तबाजी करत रहल। 'मगर राजा, ओम्मे गीत सुनै क भी बहार आयल रहल। दू चार मिला त अइसन गावत रहैं, निरफुल रण्डिन के तरे, कि तबियत खुश होय गइल।

उदासीरामजी घाटिया ने कहा—गये तो उसमें हम भी रहे, पर मुझे तो कोई आनन्द नहीं आया। ऊ सब कवि लोग न मालूम क्या पढ़ रहे थे, जिसका न सिर था, न पैर। हम त भाई एकरे पहिले भी एकाध कवि सम्मेलन देखे रहे, पर ओम्मे असली आनन्द आवा रहा। एक रतनाकरजी कवि थे। ऊ जब अर्जुन की तलवार और भीमसेन की लड़ाई पढ़ते रहे तो मानों समा बँध जाता रहा। अब त कवि लोगन पतुरिया अस सिरिफ गीतै गावै जान थै। कोई तारीफ करै चाहे न करै आपसै मैं चिल्ला-चिल्ला कर एक दूसरे का मातमपुर्सी करथ।

बाबू जयकिसुनदास बोले—आपने मुशायरा शायद नहीं सुना है उदासीरामजी! मैंने तो एक बार दिल्ली में एक मुसायरा भी सुना था। ओफ ओ। कुछ मत पूछिए। ढेर के ढेर दाढ़ी वाले मियाँ और कुछ उर्दू जाननेवाले हिन्दू भी एकट्ठा थे। एक मिला एक मुसायरा पढ़ता था तो बाकी सब चिल्ला उठते थे—सुभानाला। मर बेहया, मुकर्रर फँसा, मुकर्रर फँसा। और जो पढ़ता था, वह फिर झुक झुककर वह सलाम करता था कि देखनेवाले हँसते हँसते लोट जाते थे।

मुंशी चिरकुटलाल ने कहा—आपने शायद उर्दू नही पढ़ी है बाबू साहब। वे लोग मर बेहया, मरबेहया नहीं बल्कि मेरह-बॉ मेरहबाँ और मुकर्रर इरशाद कहते थे। इसका मानी यह हुआ कि शाबास बेटा फिर से पढ़ो।

बाबू जयकिसुनदास ने इतने आदमियों के सामने इस रिमार्क को अपना अपमान समझा। पर क्रोध को दबाकर बोले—भइया, उर्दू सुर्दू तो मैंने पढ़ी जरूर है, पर आपस की बोली समझने मे कुछ कठिनता होती है। अच्छा, तो यह तो बताइए कि वे लोग फिर से पढ़ने का क्यों कहते हैं क्या पहली बार वे लोग पढ़ने में कुछ गल्ती करते हैं क्या?

बाबू जयकिसुनदास ने इसके पश्चात् फिर कोई समाचार पढ़ना प्रारम्भ किया। इसमें आयरलैंड और डिवेलरा के बारे में कुछ चर्चा की गई थी। घसीटे ने पूछा—बाबू साहब ई आयर-लैंड जापानै में हव न ?

'नहीं यह विलायत का एक हिस्सा है।

'त विलायतौ में आपस में दलबन्दी हव का ? खाली हमरे मुलुक में आपसी लड़ाई नाहीं होत। ओ दिन तोहईं न पढ़त रहलऽ कि राजाजी कांगलेस से अलग होय गइलन। त कहो बाबू साहब राजाजी त अलग होय गइलन। अउर ओनकर रानी साहब का भइलिन। ऊ त कांगलेस में हइन न !

समाचारों के पढ़ने के बाद विज्ञापनों की बारी आई। लिपटन की चाय का विज्ञापन था। काने साव ने बाबू साहब से पूछा—कहो बाबू साहब हम त चाय साय कब्बों ना पीइत। एक बार पियले रहली त चार दिन तक कपार बत्थल। पर ऊ कउनो तोष फोस क चाय रहल। लिपटनवाली चाय का कहावे ले।

उदासीरामजी ने कहा—भइया, हमरे समझ में त ई आवऽला कि एके पियले से निपटै में आसानी पड़थी।

इतने मे ही एक कुल्फीवाले के आगमन से इन लोगों की बैठक भंग हो गई और लोगों ने कुल्फी को सार्थक करते हुए अपने अपने घरों का रास्ता लिया।

मौसेरे भाई

—+++++—

अठन्नी

मुंशी मनोहरदयाल 'मौजी' विशारद, बी. ए. ने अपने शयनागार में आकर सन्तोष की एक लम्बी साँस ली! आज सवेरे दस बजे से लेकर सन्ध्या के ७ बजे तक उन्हें दफ्तर में खटना पड़ा था। यों तो वे चार बजने के दस मिनट पूर्व ही अपनी कुर्सी पर से उठ जाया करते थे। पर आज न मालूम किस भाग्यवान् का मुँह देखा था जो उन्हें इतना अधिक घिसना पड़ा। उस पर कष्ट यह कि दफ्तर मे बिजली का कनेक्शन बिगड़ जाने से पंखे की हवा के सुख से भी वंचित रहना पड़ा था। और दिन तो वे गुलगप्पेवाले तथा आइसक्रीम-विक्रेता की कृपा से अपने विद्रोही उदर को दो-दो घण्टे पर शान्त कर लिया करते थे, पर आज न जाने क्या कारण हुआ कि उन दोनों महान् आत्माओं में से एक का भी दर्शन न हो सका। केवल पान-सुर्ती-सिगरेट के सहारे तो प्राणों में फुर्ती नहीं आ सकती! अस्तु 'मौजी' आज लड़ाई पर से भागे हुए फौजी की तरह घबड़ाए हुए, गाँव भर की भौजी की तरह शरमाये हुए, तथा पेट को पीठ से सटाये हुए जब सन्ध्या के सात बजे दफ्तर से निकले तो उनकी अवस्था देखकर यही मालूम पड़ा मानों कहीं से मातम-पुर्सी करके आ रहे हैं!

पर उनकी यह अवस्था देर तक न रही। इस परिवर्तनशील संसार में किसी की अवस्था देर तक एक सी रहती भी नहीं। अर्थात् ठीक आध घण्टे बाद जब वे चौराहे पर के विश्वम्भर होटल से निकले तो ऐसा मालूम पड़ता था मानों ग्रहण के पश्चात्

उग्रह हो गया हो। ऐसे प्रसन्न दीखते थे मानों सप्लाई अफसरी मिल गई हो।

प्रसन्न होने का पर्य्याप्त कारण भी था। उन्होंने दो आने की 'चाय' तथा तीन आने के टोस्ट खाकर जब आवाज दी 'ब्वाय', तब एक ५६ वर्ष के बूढ़े बंगाली ने उन्हें लाकर 'बिल' दे दी। पूरे पाँच आने पैसे की बिल थी। मुंशीजी ने आज निश्चय कर लिया था कि वे असीम साहस का परिचय देंगे। उनके पास एक राँगे की अठन्नी थी! मालूम नहीं किससे मिली थी! एक बार कुँजड़िन को वह अठन्नी देकर मुशीजी अपने पूर्वजों की विरुदावली सुन चुके थे? तब से वे उस अठन्नी को इस प्रकार कोट के भीतरी जेब में छिपाकर रखते थे जिस प्रकार गल्ले के व्यापारी गेहूँ छिपाकर रखते हैं! पता नहीं मुंशीजी को अपने पूर्वजों की विरुदावली अच्छी नहीं लगती थी, या क्या बात थी जो वे पूरे तीन सप्ताह तक उस अठन्नी को किसी दूकानदार के करकमलों में समर्पित करने से वंचित रहे! पर आज इस ५६ वर्ष के 'ब्वाय' को देखकर उनके निराश हृदय में भीषण आशा का सञ्चार हो उठा। उन्होंने मुस्कराते हुए उसके हाथ में वह अठन्नी रख दी थी। बोले—बाकी पैसे जल्दी लाओ!'

ब्वाय ने शीघ्र ही लाकर उनके हाथ में सात आने पैसे रख दिये और सलाम करके चल दिया! मुंशीजी के तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा पाँच आने का सामान उदरस्थ किया, खराब अठन्नी थी और उस पर तीन आने के बदले सात आने वापस पाये! यह खानसामा कुछ पागल तो नहीं था! मालूम पड़ता है किसी दूसरे ग्राहक के बदले उसके हिस्से के सात आने इन्हें भूल से दे गया है। उस ग्राहक ने सम्भवतः ॥-) का सामान खाया होगा। ओह! एकदम ॥-) का खा गया! हाँ तो ये ।≡) आने उसे मिलने थे, जो मिल गये मुझे! मुंशीजी ने सोचा भ्रम-

संशोधन कर दूँ। पर यह सम्पादकों के भ्रम-संशोधन की भाँति सरल कार्य्य न था। होटल के मैनेजर ने बिना देखे हुए अठन्नी रख ली होगी। अब खोद-विनोद करने से अठन्नी की असलियत खुलने का भय था। अतः मुंशीजी ने अब इसी में अपने मुंशीपने का गौरव समझा कि चुपचाप होटल के बाहर जावे। दूसरा ग्राहक तो मैनेजर से अपने सात आने वसूल कर ही लेगा। मैनेजर को केवल चार आने की चपत लगेगी। सो यह कोई असाधारण घटना नहीं। कभी गाड़ी नाव पर, कभी नाव गाड़ी पर। कभी ग्राहक पिटता है तो कभी दूकानदार की भी हजामत बन जाती है।

मुशीजी वास्तव में बड़े प्रसन्न थे। पाँच आने का जलपान और उस पर से सात आने दक्षिणा! और यह सब उसी राँगे की अठन्नी की बदौलत जिसने उन्हें उस दिन कई आदमियों के सामने अपने पितरों का गुणानुवाद सुनवाया था। यह खूब रही। उन्हें इस समय ऐसी प्रसन्नता हो रही थी जैसी पितरपख में घाटियों और पण्डों को होती है। श्राद्ध का भोजन और दक्षिणा तो है ही, घर ले जाने के लिए परोसा ऊपर से मुंशीजी बिजली के पंखे का अभाव तथा गुलगप्पे और आइसक्रीम फरोश के न आने का कष्ट एकदम भूल गये।

पर मुशीजी को इसका भी ध्यान आया कि दुबारा उस विसम्भर होटल में उनका जाना एकदम असम्भव हो गया है! उन्हें यह भी भय हुआ कि कहीं होटल का ब्वाय उनके पीछे २ दौड़ता हुआ आता न हो! इसलिए मुंशीजी ने अपनी गति थोड़ी और तीव्र की और गलियों में होते हुए शीघ्र ही डेरे पर गये! मिसिरजी से मालूम हुआ कि आज लकड़ी और मिट्टी का तेल न मिलने से रसोईं बनाना नहीं हो सका है! उन्होंने बतसिया को दाना भुना लाने को भेज दिया है! बतसिया अब आती ही होगी! और समय होता तो बेचारे मिसिरजी कुछ सख्त-सुस्त सुनते,

पर इस समय मुंशीजी क्षुधा महारानी के कोप-भाजन नहीं थे। उन्हें अपनी अप्रत्याशित सफलता पर हर्ष भी था, पर तेजी से आने के कारण कुछ थके भी थे! सानेवाले कमरे में ही चबेना ले आने का आदेश देकर वे शीघ्र ही शयनागार में जा विराजे। कपड़े उतारकर रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और सिगरेट जलाने के लिए जेब में से दियासलाई तथा चाँदी के सिगरेट केस को निकालने चले। हैं यह क्या! दियासलाई के डब्बे की तो कोई परवाह नहीं, पर जेब में सिगरेटकेस भी नहीं था। एकके बाद एक करके भीतरी और बाहरी पाँचों जेबों की तलाशी ली पर कहीं भी सिगरेट-केस का पता न था। सोचा दफ्तर में ही तो नहीं भूल आये। नहीं यह कैसे हो सकता है। होटल में उन्होंने सिगरेट पी थी। उन्हें यह भी स्मरण आया कि राँगे की अठन्नी निकालते समय उन्होंने उस डब्बे को भी जेब से निकाला था। हाँ उसे मेजपर रखकर ही उन्होंने सिगरेट का धुँआ छोड़ते हुए ब्वाय को अठन्नी दी थी। फिर क्या उसे जेब में नहीं रक्खा। अरे बाप रे! लाला उजबकराय दमकलचन्द भड़भड़िया के भान्जे के तिलकवाले दिन वह सिगरेट केस उन्हें सुप्रबन्ध करने के उपलक्ष्य में पुरस्कार-स्वरूप मिला था। उस समय ही लगभग १५) रु० का था। इस समय तो उसका दाम तीस रुपए कहीं भी लग सकता था। मुंशीजी ने सोचा शायद सात आने पैसे जल्दी से ले भागने की धुन में मुझे सिगरेटकेस का स्मरण न रहा। क्या होटल में इस समय चलकर उसका पता लगाऊँ। हृदय में आशा और निराशा का घोर संग्राम होने लगा, उसी प्रकार जैसे नीचीबाग की सड़क पर दो साँड़ों का संग्राम होता है। जैसे कोई तीसरा साँड़, सिपाही या कोई बहादुर पथिक उन दो साँड़ों को पीट-पाट कर अलग कर देता है वैसे ही बुद्धि ने आशा और निराशा के संग्राम को बन्द करा

कर मुंशीजी को सन्तोष धारण करने की सलाह दी। मुंशीजी समझ गये अब उस डब्बे का मिलना उतना ही कठिन है जितना भारत को स्वराज्य मिलना। मुंशीजी ने फिर एक लम्बी साँस ली! दस मिनट तक मौन रहकर चीख उठे—हाय रे अठन्नी!

स्वप्नलोक में

बतसिया जब दाना भुंनाकर लौटी तो रात के ६॥ बज रहे थे। ६ बजे की गई गई ९॥ बजे यदि बतसिया लौटी तो इसमें क्या आश्चर्य्य! रिपवान विंकिल पहाड़ पर घूमने गये थे तो एक युग के बाद लौटे थे। बतसिया तो केवल ३॥ ही घण्टे बाद लौट आई! इसलिए इसमें आश्चर्य करना था इस बात पर नाराज होना कौन भलमनसाहत थी। पर मिसिरजी को इससे क्या! वे बतसिया पर बेतरह बिगड़ खड़े हुए। बोले—क्यों! बारम्बार समझा दिया कि जब जरूरी काम रहा करे तब तो देर मत किया कर! पर तुझे तो गप्प करने से ही फुर्सत नहीं! लग गई भड़भूंजे के यहाँ गप्प करने। लालाजी अब तक क्या जागते होंगे? एक तो दफ्तर से आज यों ही देर करके आये हैं। अब तक तो सभी खा-पीकर सो जाया करते थे। पर मिट्टी के तेल वालों का नाश हो। आज उन्हें रसोई भी खाने को मयस्सर न हुई। उसपर दाना-दूनी से भी अब तक भेंट न हुई। कल सवेरे उनकी परदादी का श्राद्ध भी है। बाँभन खा लेंगे तो कहीं उन्हें भोजन मिलेगा। लकड़ीवाले ने कल तड़के आठ बजे तक लकड़ी दे देने का वादा किया है। कहीं कल भी लकड़ी न मिली तो अच्छा श्राद्ध होगा! खैर अब भी खड़ी मुँह क्या ताक रही है! यह नहीं होता कि तुरत जाकर रसोई-घर मे से थाली और नमक-मिर्च निकाल लावे और दाना बाबूजी को उनके कमरे में दे आवे।

बतसिया में जहाँ अनेक गुण थे वहाँ दो दोष भी थे। पहला दोष तो यह कि वह कुछ बातूनी थी। गप्प करना उसे सब कामों से अच्छा लगता था। दूसरा दोष यह था कि वह कुछ ऊँचा सुनती थी। पर इस दोष के लिए वह कहाँ तक उत्तरदायी थी। यह तो विधि का विधान था, या उसकी वृद्धावस्था का अनिवार्य्य परिणाम। यही कारण था कि एक बात समझाने के लिए यदि किसी के पास एक घण्टा समय हो तो वह बतसिया से बातें करे। वह सब बात फिर भी भली भाँति सुनकर समझ पाती थी कि नहीं इसे तो वही जाने, पर परिश्रम का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता था। किसी-न-किसी रूप में वह कार्य्य सम्पादन अवश्य कर देती थी। कभी-कभी किसी बात को उल्टापुल्टा समझकर वह लड़ भी बैठती थी। मिसिरजी की जिह्वा, तालु और कंठ को, बतसिया के साथ बातें करने में पर्य्याप्त व्यायाम करना पड़ता था। जब वे रसोईघर के बाहर दालान में बतसिया को कोई काम करने के लिए समझाते थे तो यही मालूम पड़ता था मानो कहीं उच्च स्वर में वेद-पाठ हो रहा है या कांग्रेस के मञ्च पर से कोई नेता लेक्चर झाड़ रहा है।

यह बात नहीं कि मिसिरजी में भी दोष न हो। निर्दोष, एकदम निर्दोष, ऐसा प्राणी तो संसार में शायद ही कोई हो। हाँ, अवतारों और महापुरुषों की बात और है। पर सांसारिक सामान्य प्राणियों में आपको ऐसा एक भी न मिलेगा जिसमें एकाध दोष न हों। इसी न्याय के अनुसार मिसिरजी में भी कुछ दोषों का होना अस्वाभाविक नहीं। बेचारे मिसिरजी की स्मरणशक्ति उन्हें कभी-कभी धोखा दे दिया करती है। अपराध करती है स्मरणशक्ति, धोखा देती है वह श्रीमान् मिसिर जी को, अर्थात् मिसिरजी उसे कभी धोखा नहीं देते, पर नाम बदनाम होता है मिसिरजी का! इसी को कहते हैं अपराध कोई

करे, और दण्ड पावे कोई और! और मिसिरजी कोई ऐसी भीषण भूल भी तो नहीं करते कि जिससे ससार का कोई अहित हो, दुनियाँ में उथल-पुथल मच जाय। उनको भूल हिटलर की, रूस पर हमला करने ऐसी भूल नहीं होती कि जिसमें लाखों मनुष्यों का सफाया हो जाय। उनकी भूल इंगलैंड के भू० पू० प्रधान मन्त्री मिस्टर चेम्बरलेन की भूल तो है ही नहीं कि जिसके परिणामस्वरूप आज संसार में महानाश का नग्न नृत्य हो रहा है। मिसिरजी की भूल बस साधारण कोटि की ही होती है। वे रसोईघर की ताली कहाँ रख दिया करते हैं, इसे दस-पाँच मिनट बाद ही भूल जाया करते हैं। उनकी ताली प्रायः नित्य ही गायब रहा करती है। कभी खोजने पर वह ताली गुसलखाने के ताख पर मिलती है तो कभी पाखाने के लोटे के पास! कभी उस ताली के दर्शन शालिग्रामजी के सिंहासन के नीचे होते हैं तो कभी रसोईघर के ही अन्दर पनाले पर रक्खे हुए जूठे बरतनों में। भूल करते हैं मिसिरजी और बातें सुननी पड़ती हैं बतसिया को। इस ताली के प्रसंग को लेकर उनमें और बतसिया में झड़प हो जाया करती है। मिसिरजी इस बात का प्रतिपादन किया करते हैं कि उन्होंने ताली अमुक स्थान पर रख दी थी, वहाँ से उस ताली को स्थानान्तरित करना बतसिया का ही काम है। बतसिया अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए नाना प्रकार के शपथ खाती हुई, मिसिरजी से भी गंगा-तुलसी उठाने के लिए ललकारभरी आग्रह करती है।

हाँ तो जब मिसिरजी ने कहा—तू अभी तक खड़ी है। यह तो नहीं होता कि रसोईघर से थाली और नमक-मिर्च ले आकर दाना बाबूजी को दे आती, तो बतसिया की समझ में यह आया कि मिसिरजी फिर रसोईघर की ताली के बारे में उसे अपराधी सिद्ध करना चाहते हैं। अभी कल ही ताली ढूँढ़कर

उसने मिसिरजी को अच्छी तरह लजवाया था। मिसिरजी ने स्वयं स्वीकार कर लिया था कि ताली उन्हीं की गलती से लकड़ी और उपलोंवाली कोठरी में पड़ी रह गई थी, अब आज फिर उसे कहीं बिलवाकर ये चले हैं मुझे दोषी ठहराने। फलतः बतसिया को बड़ा क्रोध आया। एक तो उसे आज घर लौटने में ही देर हो रही थी। बर्तन चौका करने के बाद दाना भुँजाने जाना पड़ा। अब रात के ८ बजे (बतसिया की समझ से अभी ८ ही बजे थे) वह ताली खोजने का परिश्रम नहीं कर सकती। वह झनककर बोली—महाराज, ई त आप क सवा सोरहो आने बेजायँ हव। गल्ती करबऽ अपनै, अउर उप्पर से हमहीं के कमजोर पाय के दबावै क उपाय सोचल करलऽ। अबहीं कहिहऍं न फरियाय गयल रहल कि केकर कसूर रहल ! बतावऽ हमसे तोहरे ताली साली से का मतलब ! आपन काम-धन्धा कइली अउर घरे गइली। एहर ओहर चीज टकटौरे क हमार आदत होत त कहीं न टिहटित ! एही घरे में आज तीन कम बीस बरस से धन्धा करत होय गयल। बाबूजी हमरे सामने क जनमल हउवन। तू इहै दू अढ़ाई बरस से जब से अइला है तबैसे नकटाचीनी (नुक्ताचीनी) करब सुरू कइलै रहलऽ नाहीं त हम्में कोई दू बात कब्बौं नाहीं कहलेस। बताव। भला। अब आधी रात के घरे जाये के बखत त हम चलीं ताली, ढूँढै ! बाबा ई हमार कइल न होई। एक दिन क होयँ त एक दिन क। ई रोज रोज क परेसानी कउने काम क ?

बतसिया जब बोलना प्रारम्भ करती थी तो रुकने का नाम न लेती थी। उसकी जिह्वा रूपी डाकगाड़ी मिसिरजी के शब्दों रूपी छोटे स्टेशनों को उपेक्षा-बुद्धि से देखती हुई गन्तव्य स्वधाम को चली जा रही थी। मिसिरजी उसे चुप कराकर ठीक तौर से 'थाली' का वाच्यार्थ समझाने का ज्यों-ज्यों परिश्रम कर

रहे थे, त्यों त्यों बतसिया की वाक्शक्ति बढ़ रही थी! कहीं आध घण्टे भर की माथापच्ची के पश्चात् बतसिया को यह बात समझायी जा सकी कि मिसिरजी की ताली सुरक्षित है तथा इस समय उसके खोजने का परिश्रम उसे उठाने को नहीं कहा गया था। वास्तव में थाली को लाने की आज्ञा उसे दी गई थी! ज्योंही बतसिया को ताली थाली का अन्तर बताया गया त्योंही वह प्रसन्नता से आँखे नचाती और हाथ मटकाती हुई बोली—
ल हम कहत न रहली कि तोहई कहीं रखले होबा। आखिर मिलल न। अब फिर मत कहियो हम्मैं दोष पाप लगइह! पहिलैं काहैं न कह देहला कि थरिया निकलले आवा। ई थाली साली न कहता त न बनत! हमरे सुनै में आयल कि ताली। थरिया कहले होता त फट से समझ गइल होइत।

अस्तु, जब कलेक्टरगंज के घण्टाघर की घड़ी ने दस बजने की सूचना दी, ठीक उसी समय बतसिया एक जलती मोमबत्ती तथा दानों से भरी थाली लिए मुंशी मनोहरदयाल श्रीवास्तव 'मौजी' बी० ए० विशारद के शयनागार में पहुँच गई।

मुंशीजी का स्थूल शरीर उस समय यद्यपि कलेक्टरगंज की उस गली के अन्दर बने हुए उस छोटे से मकान की उस कोठरी के भीतर उस चारपाई पर ही था, परन्तु उनका सूक्ष्म शरीर या आत्मा स्वप्न-लोक की सैर कर रहा था। मुंशीजी सिगरेट केस खो जाने के दुःख से दुःखी होकर कुछ देर तक तो चारपाई पर चुपचाप पड़े थे, फिर पश्चिम ओर वाली खिड़की खोलकर कोई किताब पढ़कर उन्होंनेजी बहलाना चाहा। उस खिड़की के रास्ते गली में लगी हुई बिजलीबत्ती का प्रकाश वे मुफ्त मे ही प्राप्त कर लेते थे। मुंशीजी ने राबर्ट ब्लेक का एक जासूसी उपन्यास उठा लिया! उसमें लण्डन के मेयर साहब के यहाँ डाका पड़ने तथा राबर्ट ब्लेक द्वारा उस घटना के पता लगाने का मनोरंजक तथा

आश्चर्यजनक वर्णन था। मुशीजी का ध्यान जम नहीं रहा था। आँखें उपन्यास पर थीं, और कान दरवाजे की ओर जिधर से मिसिरजी या बतसिया के दाना लेकर आनेकी सम्भावना थी।

प्रतीक्षा करते करते सवा घण्टे से ऊपर हो गया, पर जब मिसिरजी या बतसिया—दोनों में से किसी के दर्शन न हुए तब आँखों और कानों ने यह षड्यन्त्र रचा कि अब सुस्ताया जाय। मुंशीजी अभी तीसरा परिच्छेद ही पढ़ रहे थे। राबर्ट ब्लेक वेष बदलकर डाकुओं के अड्डे में घुस गया है पर वहाँ डाकुओं के सरदार ने उसे पहचान लिया है। वह राबर्ट ब्लेक को अपने फन्दे में फँसाने के लिए उपाय सोच ही रहा था कि मुंशीजी निद्रा में निमग्न हो गये।

पहली नींद थी। बतसिया ने कमरे में लाकर मेज के ऊपर जब दाना रखकर मुंशीजी को आवाज दी तो मुंशीजी घोर निद्रा में थे। वे जवाब कहाँ से देते। पर बतसिया को ऐसा मालूम पड़ा मानों मुंशीजी ने उसे दाना टेबुलपर रखकर घर चले जाने को कहा है! इसलिए वह 'हाँ बचवा। तब का जल्दी से खा-पी के सूतला, कल सराध ठहरल। आज खहऊ के मयस्सर नाही भइल! मिसिरजी क त तलियै रोज हेरायल रहलऽ। ऊ भला गत क दूठे रोटी सेंक के बखत से कब दे सकऽलन। अच्छा अब हम जात हई। आज बड़ा अबेर होय गयल। कउनौ काम त नहिनी।'

बतसिया की मोमबत्ती बुझ चुकी थी। केवल गली में से कुछ रोशनी कमरे में आ रही थी। मुंशीजी चारपाई पर लेटे हुए थे। छाती पर पुस्तक पड़ी हुई थी। बतसिया ने उस क्षीण रोशनी में समझा कि मुंशीजी तौलिया से अपनी नाक साफ कर रहे हैं। उसने यह भी समझा मानों उन्होंने कहा है, कि हाँ अब तू जा सकती है। आज तुझे बड़ी मेहनत पड़ी है। कल जरा जल्द ही आना।'

'तब का बचवा, कल हम कउवा न बोली, तब्बै आय जात। महराजिन के लिवहऊ के त जाये के होई! सराध टहरल कि कौनो बात हव!' यह कहती हुई बतसिया वहाँ से चली गई!

मुंशीजी स्वप्न देख रहे थे! राबर्ट ब्लेक को डाकुओं ने पकड़ लिया है। किन्तु राबर्ट ब्लेक के चेहरे पर विषादकी रेखा तक नहीं है। वे मुस्करा रहे हैं। मुस्कराते हुए ब्लेक ने एक बूढ़े डाकू को चाय और टोस्ट लाने की आज्ञा दी। बूढ़ा चला गया। राबर्ट ब्लेक ने अपनी जेब से एक राँगे की अठन्नी निकाली। तब तक मुंशीजी ने उस अठन्नी को देख लिया और उछलकर ब्लेक के हाथ से छीनकर ले भागे। ब्लेक मुँह ताकते रह गये। इसके पश्चात् मुंशीजी ने देखा कि वे बम्बई में गाँधी-जिन्ना मिलन के समय प्रवन्धक बनाये गये हैं। महात्मा गान्धी ने जिन्ना साहब के हाथ में एक रांगे की अठन्नी रखते हुए कहा—जल्दी से गुलगप्पा और आइसक्रीम मँगाइये। पर जिन्ना साहब ने उस अठन्नी को जमीन पर पटक कर कहा—वाह साहब! यह अठन्नी तो नकली है। मेरा आपसे समझौता नहीं हो सकता। यह कह कर जिन्ना साहब ने जेब में से एक चाँदी का सिगरेटकेस निकाला और.. ....मुंशीजी ने साफ देखा कि यह सिगरेट केस वही है जिसे वे विसम्भर होटल में भूल आये थे। पर इसके पहिले कि मुंशीजी श्रीजिना साहब से कुछ पूछें तब तक जिना साहब गलियों में से होते हुए अपने घर भाग गये। मुंशीजी ने थाने में रिपोर्ट कर दी। राबर्ट ब्लेक को इस मामले में तहकीकात करने का भार सौंपा गया। राबर्ट ब्लेक ने बतसिया को ही अपराधी पाया। मिसिरजी कह रहे थे कि वह दाना भुँजाने गई थी। पर राबर्ट ब्लेक ने मिसिरजी की बात स्वीकार नहीं की। मिसिरजी ने नौकरी छोड़कर लकड़ी की दूकान कर ली और बतसिया अपने नैहर भाग गई। वहाँ वह रोज दाना

भुँजाया करती थी। एक दिन रावर्ट ब्लेक ने उसको देखा तो वह जोर से भागी। रावर्ट ब्लेक चिल्ला रहे थे—अपनी अठन्नी ले जा। मेरे सात आने पैसे वापस कर। मुंशीजी ने कहा—मैं हर्गिज वापस नहीं कर सकता। पहिले मेरा चाँदी का सिगरेट केस ले आ। तू ही अकेला तो इस कमरे में था, जब मैंने तुझे अठन्नी दी, तुझसे पैसे वापस लिए और फिर यहाँ से चला गया। बूढ़ा ब्वाय (जो एक सेकेण्ड में ही रावर्ट ब्लेक से होटल का ब्वाय बन गया था) कह रहा था—मैं क्या जानूँ आपका सिगरेट केस। हाँ, उस दिन चार आने मुझे अपनी तनख्वाह में से कटाने पड़े थे। पर मुंशीजी उससे बहस किये जा रहे थे। बातों ही बातों में हाथापाई की नौबत आ गई। बूढ़े बंगाली ने हारकर अन्त में चालक-हीन विमान का प्रयोग किया। मुशीजी के दफ्तर में बिजली का कनेक्शन बिगड़ गया। पंखे का चलना बन्द हो गया। चालक-हीन विमान के कारण गुलगप्पेवाले का खुमचा भी उलट गया और आइसक्रीमवाला वेतरह घायल हुआ। मुंशीजी की परदादी को यह सब देखकर बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने बतसिया को भेजा कि जाकर रावर्ट ब्लेक को बुला ला। रावर्ट ब्लेक ने आकर बूढ़े बंगाली को पकड़ लिया। उसकी तलाशी ली गई तो उसकी जेब से एक राँगे की अठन्नी, एक चाँदी का सिगरेटकेस, सात आने पैसे, लण्डन के लार्ड-मेयर की सोने की रिष्टवाॅच, एक बोतल मिट्टी का तेल, मिसिर जी की ताली, तथा दो बोरे गेहूँ के निकले।

मुशीजी का बेहद प्रसन्नता हुई। वे मारे खुशी के चिल्ला उठे! उनके चिल्लाते ही किसी बर्तन के झन्न से गिरने की आवाज हुई। मुंशीजी चौंककर उठ बैठे। देखा कि सवेरा हो गया है और एक मोटा बन्दर जो अब तक मेजपर रखी हुई थाली का आधे से अधिक दाना उदरस्थ कर चुका था, थाली पटक कर

भागा जा रहा है। मुंशीजीने यह भी देखा कि जासूसी उपन्यास के पन्ने फाड़कर इधर उधर फेंके हुए हैं।

बूढ़ा 'ब्वाय'

होटल के बूढ़े 'ब्वाय' ने धूप में बाल नहीं सफेद किये थे। उसमें और योग्यता चाहे न रही हो, इतनी योग्यता अवश्य थी कि वह आदमी की सूरत देखकर ही उसके रंग-ढंग से परिचित हो जाता था। इसलिए वह हमारे मुंशी मनोहरदयाल-सरीखे कितने ही 'क्लर्कों' और 'कुर्कअमीनों' को जन्म भर पढ़ा सकता था। यह बात भी नहीं कि वह खरे और खोटे सिक्कों की पहिचान में भूल करता हो। जिस सिक्के को लोग घण्टों बजा बजाकर परखते हैं और फिर भी नहीं पहिचान पाते कि यह खरा है या खोटा, उसे वह चार गज की दूरी से ही ताड़ लेता था। इसलिए जब मुंशी मनोहरदयाल ने उसे मुस्कराते हुए अठन्नी दी और जल्दी पैसे फेरने को कहा तो बूढ़ा तुरन्त भाँफ गया कि दाल में काला है।

बुड्ढे ने यह भी देखा कि चाँदी का एक स्वच्छ सिगरेटकेस कुर्सी पर पड़ा हुआ है और मुंशीजी को उसका ध्यान नहीं है। अतएव उसने यही उचित समझा कि जितनी शीघ्र मुंशीजी उस डब्बे से दूर हो जायँ उतना ही अच्छा है। यही कारण था कि उसने चट से लाकर सात आने पैसे उनके हाथ में रख दिये। उसने ठीक ही अनुमान किया था कि मुंशीजी पैसे पाकर सीधे पलायन करेंगे; पीछे मुडकर देखेंगे भी नहीं। चोर का जी आधा होता है। बुड्ढे ने मनोविज्ञान का किताबी अध्ययन नहीं किया था, पर उसे इस बात का पता था कि नकली अठन्नी देने के बाद मुंशीजी की मनोदशा कुछ चञ्चल रहेगी। वे डब्बे को सुध भी न कर पायेंगे। डब्बे की ओर तो उनकी पीठ थी। वे अठन्नी चलाने की धुन में जो थे। नकली अठन्नी के भेद खुल जाने पर लज्जित होने का भय भी उन्हें होगा ही। यह बात नहीं कि

मुंशीजी इस बात से इनकार कर जायं कि उन्होंने जान-बूझकर खराब अठन्नी नहीं दी थी। उन्होंने जानबूझकर दी थी, इस बात को बुड्ढा प्रमाणित कर सकता था। मुंशीजी को चाहे न पता रहा हो, पर बुड्ढे को उस घटना का पता था, पता क्या, वह स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित था, जब कुंजड़िन इनके सात पुरुषों का श्राद्ध एक नकली अठन्नी के कारण कर रही थी। बुड्ढा भी तो उसी कुंजड़िन की दुकान से रोज तरकारियाँ खरीदता था। उस दिन मुंशीजी किस तेजी से वहाँ से भागे थे, इसे वह स्वयं देख चुका था। यदि मुंशीजी मे साहस होता तो उसी दिन कह सकते थे कि मैंने यह अठन्नी नही दी थी। अतः बुड्ढा मुंशीजी को ओर से निश्चिन्त था।

और यही हुआ भी। सात आने की अप्रत्याशित रकम पाकर मुंशीजी इस प्रकार भागे जैसे सिपाही को देखकर बिना लम्प के साइकिलवाले भागते हैं। पर बुड्ढे ने उनके भागने के पहले कुछ मजाक भी कर दिया! उसके मजाक में मुंशीजो के प्रति कुछ दया का भाव भी था या नही, यह नहीं कहा जा सकता। शायद चिढ़ाना ही उसका उद्देश्य रहा हो। उसके मजाक का पता मुंशीजी को तब चला, अर्थात् पूरे तीन दिन के बाद, जब तक कि बुड्ढा ब्वाय सिगरेटकेस बेचकर उससे अपनी 'बुड्ढी ब्वाइन' के लिए एक जोड़ा धोती और अपने लिए एक जोड़ा धोती और अपने लिये तीन गमछे खरीद चुका था।

अर्थात् मुंशीजी की परदादी के श्राद्ध के दूसरे दिन जब धोबिन कपड़े लेने आई तो मुंशीजी ने, पैण्ट धोने को देते समय जब उसके जेबों को इस विचार से टटोला कि कहीं कोई कागज-पत्तर न पड़ा हो, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसकी जेब से उनकी वही चिरपरिचित अठन्नी निकल पड़ी।

—:o:—

कथावार्ता

पण्डित गजानन मिसिर, कोदई की चौकी पर विशाल सिंहासन के ऊपर बैठे हुए श्री रामायण की कथा बाँच रहे थे। नर-नारियों की अच्छी संख्या श्रोता रूप में विराजमान थी। थुलथुल पाँडे, बुलाकी साव गजाधर भगत तथा पनारू लाल कथा भी सुन रहे थे, और बीच बीच मे आपस में उसपर टीका-टिप्पणी भी कर रहे थे। कभी कभी स्वयं पण्डितजी से भी शंकाएँ कर बैठते थे! सुन्दर महराज सुँघनी का नास ले लेकर बीच बीच में अपने विशाल नासिका-रन्ध्रों से सिंहनाद या 'हवाई फायर' कर के अपने बगल में ऊँघते हुए अयोध्याराम तमोली को चैतन्य कर दिया करते थे। स्त्रियों में कोई अपने बच्चे को दूध पिला रही थी, कोई रोते हुए बच्चे को गोद में हिला हिलाकर सुलाने का प्रयत्न कर रही थी, कोई कथा सुनते हुए भी अपने पड़ोसियों के घर के हाल-चाल और लड़ाई-झगड़ों की अपनी संगिनी और समवयस्काओं से आलोचना कर रही थी!

हाँ तो व्यासजी ने कहना प्रारम्भ किया—इस प्रकार चैत शुक्ल नवमी के मध्याह्न समय भगवान् ने श्रीराम नाम से दशरथ और कौशल्या के पुत्र रूप में, भक्तों को सुख देने के लिए अयोध्या में अवतार लिया।

इधर दस-पाँच मिनट से सुन्दर महराज ने सुँघनी सूँघकर हवाई फायर करना शायद बन्द कर दिया था, इससे अयोध्या तमोली ने फिर ऊँघना प्रारम्भ कर दिया! वे ऊँघ रहे थे और कुछ सोच भी रहे थे। उनके मुहल्ले में मुंशी निरपटलाल के यहाँ कल ही बिजली के तारों की चोरी हुई थी! चोरों का पता नहीं चल रहा था। अयोध्या तमोली भी मुंशीजी के यहाँ प्रायः आया जाया करते थे। वे तार कहाँ रक्खे रहते थे, इसका पता

भी मथुरा तमोली को था ! अयोध्या तमोली ने ही तार को चुराया था, या किसी दूसरे व्यक्ति ने, यह बात और थी ! कम से कम किसी ने मथुरा तमोली से इस विषय में पूछ-ताछ नहीं की थी ! पर वे डरते थे कि कहीं कोई उन्हीं पर सन्देह न कर बैठे।

हाँ तो मथुरा तमोली ऊँघ रहे थे और यही सब सोच रहे थे। सोचते सोचते वे अर्धनिद्रित हो चुके थे कि इतने में उनके कर्ण-कुहरों में ये शब्द पड़े—'अयोध्या में अवतार लिया !' अयोध्या तमोली इतने जोर से चौंक उठे कि उनका चश्मा पृथ्वी पर गिरकर एक बटे दो हो गया और वे स्वय भी सुन्दर महराज के ऊपर गिरकर उनके आलिंगन का सुख करने लगे। अयोध्या तमोली ने सुन्दर महराज से कहा—क गुरू ! ई का कहत हौ। मैंने कहाँ तार लिया। अइसे कोई के दोष पाप लगावै नाहीं होत।

पर श्रोता मे से प्रायः सभी या तो कथा सुनने में निमग्न थे या पारस्परिक आलोचना-प्रत्यालोचना में; जिससे वे लोग अयोध्या तमोली की बात को न सुन सकने से उनका समर्थन या खण्डन करने से वंचित रह गये ! अयोध्या तमोली ने भी जब देखा कि कोई उनकी बात का खण्डन नहीं कर रहा है तो वे पुनः निर्भय निद्रा का सुख लूटने लगे। व्यास जी बहुत आगे बढ़ चुके थे ! वे कह रहे थे—महाराज दशरथ ने मारे आनन्द के बाजे बजवाये ! मन्दिरों में घड़ी घण्टे और शंख की ध्वनि होने लगी घर में पतिव्रताएँ मंगलगान करने लगीं ! दशरथ ने नन्दीमुख श्राद्ध किया तथा ब्राह्मणों को लाखों गउएँ दान में दीं ! सवेरे ही दही लुटाया गया ! दही से कीचड़-सा हो गया ! हाँ इतना दही लुटाया गया था !

बुलाकी साव थोड़े पढ़े लिखे और सुधारवादी थे। रोज अखबार भी बाँचा करते थे ! अखबार बाँचते रहने पर भी अभी उनमें धर्मभाव बचा हुआ था, यह बड़े आश्चर्य की

बात थी ! हाँ यह अवश्य था कि वे कभी कभी अखबार के प्रभाव में आकर यथायोग प्रश्न भी कर बैठते थे ! इसी कारण उन्होंने पण्डितजी को तुरन्त टोका—क महराज ओ बखत का लोग दही को खराब चीज समझत रहे जो ओके फेंक दिहिन। अउर लाखों गायें कहाँ रहिन ! जनम के समय सराध-फराध का कवन कारण रहा। हाँ अउर ई जवन आप कह्यो कि पतिव्रताएँ मंगल गान करैं लगीं, त का जे पतिव्रता नाहीं रहिन ऊ नाहीं किहिन ! 'पतिव्रता' शब्द से आपका मतलब का है !

व्यासजी पर एक साथ इतने प्रश्नों की बौछार हुई। वे बोले—'ठीक है। आपके प्रश्न जो हैं, सो बड़े ही अच्छे हैं ! आजकल प्रश्न करने की प्रथा ही चल पड़ी है ! आप तो खैर पढ़े-लिखे और आपस के आदमी हैं, पर कभी कभी धोबी, और चमार तक जो कुछ जानते बूझते नहीं, अनाप सनाप प्रश्न कर बैठते हैं। अरे साहब मै किस खेत की मूली हूँ। जब महात्मा करपात्री स्वामी ऐसे वेदशास्त्रों के पूर्ण पण्डित और आचारवान संन्यासी से, लण्ठ चपाट लोग जिन्हें धर्मशास्त्र के एक अक्षर का ज्ञान नहीं 'संन्यासी और करपात्री' शब्द का अर्थ पूछते हैं और उनके यज्ञ को नियम-विरुद्ध बतलाते हैं, तो मेरी आपकी हस्ती ही क्या है। अब यदि करपात्रीजी अपने यज्ञ का सब काम-धाम बन्द करके अखबार को रोज पढ़कर उसमें छपे हुए ऐरे गैरे नत्थू खैरे लोगों के 'लण्ठ-वाद' का उत्तर देना प्रारंभ करें या जनता में यह सिद्ध हो जाने दें कि उन्हें 'संन्यासी' का लक्षण नहीं मालूम ! भइया आजकल विचारस्वातंत्र्य, भाषण स्वातन्त्र्य, और कार्य-स्वातंत्र्य, की माँग की जा रही है ! पर इन तीनों प्रकार के स्वातंत्रय का अर्थ केवल वैदिक और शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करके 'यथेच्छाचार' फैलाना है। गोसाईं जी लिख ही गये हैं कि कलियुग में 'मारग सोइ जा कहँ जो

भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा'।

बुलाकी साव ने फिर टोका—लेकिन पण्डित जी करपात्रीजी को उत्तर देकर शंकाओं का समाधान तो कर ही देना चाहिए। सम्भव है कि लोग यही समझे कि करपात्रीजी को उत्तर देना नहीं आता या वे उत्तर देने में असमर्थ हैं। यदि वे उत्तर दे देंगे तो उनका प्रभाव और भी बढ़ेगा और यज्ञ के लिये चन्दा भी अधिक उतरेगा।

"क्या बात है चन्दा की एक ही रही"—व्यासजी ने मुस्कराते हुए कहा—'यह हरिजन-फण्ड या बंगाल-पीड़ित-कोष का चन्दा थोड़े ही है। यह है यज्ञ का चन्दा! इसमें हरएक से रुपया लिया ही नहीं जा सकता। बड़े बड़े सुधारवादी सेठों ने इसमें रुपया देना चाहा है, एक दो नहीं, दस बीस हजार, पर करपात्रीजी ने अस्वीकार कर दिया! और यही कारण है कि ऐसे सेठों को जलन हुई है और वे पण्डितों को बहकाकर, विशेष दक्षिणा का प्रलोभन दे देकर, डेढ़ डेढ़ तोला सोना तक देकर, चद्दरा बाँटकर, उनसे यह प्रतिज्ञा करा रहे हैं कि वे करपात्रीजी के यज्ञ-समारोह में भाग ले! पर भाई "यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।" कुत्ते भूँकते ही हैं, हाथी अपने रास्ते चला ही जाता है। यदि हाथी भी घूमघूम कर कुत्तों की शंकाओं का समाधान करता फिरे, तो हाथी का महत्व ही क्या! हाँ हाथी हाथी की ही शंका का समाधान करता है। या कुत्ता भी यदि हाथी के पास जाकर विनम्रतासे शंका उपस्थित करे तो उसका समाधान अवश्य होगा पर भूँकना तो शंका करना नहीं है। यह तो एक प्रकार से गाली देना ही है। रहा यह कि करपात्रीजी प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हैं, तो इसका समाधान यह है कि करपात्रीजी की बड़ी हस्ती है, मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ। 'जिस किसी भी

मूर्ख को जो कोई भी शंका करनी हो, मेरे पास आवे। यदि मैं उसकी समस्त शंकाओं का समाधान न कर सकूं तो पोथी-पत्रा गंगा में बहाकर अपना नाम ही बदल दूं।

'लेकिन पंडितजी'—मुंशी पनारूलालने प्रश्न किया—यह तो बताइए कि काशी के पण्डितों ने रुपया लेकर यज्ञ का विरोध करना क्यों शुरू किया? अब जनता की श्रद्धा काशी के पण्डितों पर कैसे रह सकेगी? जब रुपया ही सब कुछ है तो यज्ञ और धरम करम की क्या जरूरत। और जब बाँभन लोग खासकर कासी के बाँभन ई सब काम लालच में पड़कर करेंगे तब बाकी लोग क्या करेंगे?'

'ठीक है मुंशी पनारूलालजी, यही तो बात है। दस-पाँच पण्डितों में, जिनमे काशी के निवासी भी हैं और बाहर से आकर दो चार साल से यहीं बसनेवालोंने भी, रुपया लेकर यज्ञ का विरोध शुरू किया है! पर इससे क्या सभी काशी के पण्डित बदनाम हो गये? मैं भी तो काशी का रहनेवाला हूँ। निर्धन भी हूँ। पर कोई सेठ का बेटा फोड़ तो ले मुझे। डेढ़ तोला सोना नहीं, मेरे बराबर भी तौल दे, पर गजानन मिसिर न्याय और सत्य को छोड़नेवाले नहीं! रावण भी तो ब्राह्मण ही न था! तो क्या इसी कारण वसिष्ठ और अगस्त्य की भी निन्दा करनी उचित है! आज ही देखो न! संन्यासियों में ही कितने ऐसे हैं जो मोटरों मे घूमते हैं, छानते भी हैं और बाजार की सैर भी करते हैं और एक करपात्रीजी भी हैं जो त्याग की मूर्ति हैं! यदि करपात्री के पास पैसा होता, यदि वे अपने सौ-पचास पिट्ठू बनाते, सम्पादकों को जलपान कराते तो उन्हें त्यागमूर्ति की पदवी मिल गई होती! पर जहाँ तक मैं जानता हूं वे संसार के कल्याण के लिए अवतरित हैं, निन्दा और स्तुति से उनका कोई मतलब नहीं! मैं ही उनकी इतनी बड़ाई कर रहा हूँ, पर वे

इससे प्रसन्न होनेवाले नहीं, आप उन्हें दस गालियां दे दें तो आप पर रुष्ट होनेवाले नहीं। और यही एक सच्चे महात्मा का लक्षण है। जो कहे सो करे। रोज रोज एक नई स्कीम बनाना क्या उचित है। मन में कुछ, मुँह में कुछ, कार्यरूप में कुछ। पर ऐसे लोगों के पिट्ठुओं की कमी नहीं! लोग हँसते हैं कि भारत भी कैसा देश है जहाँ अन्ध-भक्ति और अन्ध-विश्वास का राज्य है। पर यह भी सच है कि बहुत से नौसरिया महात्मा लोग कभी के मिट्टी में मिल गये होते यदि उनके चेला अन्ध-भक्त न होते!

रहा विरोध की बात, तो विरोध किसका नहीं होता! महात्मा तुलसीदास तक का विरोध इसी काशी मे हुआ था! विरोधियों मे कुछ पण्डित भी थे! सम्भव है कि उस समय भी 'डेढ़तोलवा' नामक अस्त्र का प्रयोग किसी बिडालव्रती सेठ ने किया हो।

'हाँ एक बात और! यह कैसे मालूम कि ये विरोधी पण्डित वास्तव में ब्राह्मण ही हैं। सम्भव है कि इनमें एकाध शुद्ध ब्राह्मण भी हों, पर अधिकांश जाति में नीच तथा टाट के बाहर ब्राह्मण भी तो हो सकते है। अधिकांश वेदशास्त्र को न मानकर रईस नास्तिकों का ही दरबार किया करते हैं। यहीं काशी में एक डाक्टर हैं, मैं नाम न लूँगा, जो जाति के नाऊ हैं, पर अपने को शर्म्मा लिखते हैं? क्या उनका नाम सुनकर भ्रम नहीं उत्पन्न हो सकता! काशी के बाहरवाले व्यक्तियों से यदि आप कहें कि अमुक शर्म्माजी यज्ञ का विरोध कर रहे हैं। कौन भकुवा समझेगा कि ये शर्म्मा ब्राह्मण नहीं वरन् नाऊ हैं। कुछ क्षत्रिय भी तो अपने को शर्म्मा लिखते हैं। मुझे मालूम है कि एक साहब कचहरी में किसी मुकदमे मे गवाही देने गये थे। वहाँ जज ने पूछा आपका नाम, तो उत्तर दिया 'रामनारायण शर्म्मा', फिर पूछा आपके बाप का नाम, तो बोले—'पनारूसिंह'! जज

साहब चौंक पड़े। बोले—क्यों साहब आपके बाप सिंह, तब आप शर्मा कैसे ? पर वस्तुस्थिति यही है। कितने कायस्थ अपने को पाण्डेय लिखते हैं ! तो क्या इनके कारण असली पाण्डेय भी बदनाम हो जायँगे।

एक बात और ! मैंने सुना है कि हिन्दू-मुसलिम दंगा शुरू कराने के लिए बहुत से मुसलमान आपस में ही छुरेबाजी कर लेते हैं और शोर मचा देते हैं कि हिन्दू ने छुरा भोंका। चलिए दंगा शुरू हो गया। कांग्रेस के अन्दर भी, कांग्रेसवालों का ही कहना है कि ऐसे लोग हैं जो वास्तव में कांग्रेसी नहीं, वरन् अपना मतलब साधने के लिए कांग्रेसी का वेष बनाया है। ये लोग समय पर कोई खुराफात कर बैठते हैं जिससे कांग्रेस को दबाने, कुचलने, लाठी चार्ज करने आदि के लिए पुलिस को प्रयत्नशील होना पड़ता है ! जुलूस जा रहा है, किसी नकली कांग्रेसी ने पुलिस पर ढेला फेक दिया, पुलिसने गोली चलाई। अब एक नकली कांग्रेसी के कारण सैकड़ों असली कांग्रेसी समाप्त हो गये ! यह मैंने एक प्रसिद्ध कांग्रेसी के ही मुँह से सुना है। अब बताइए इसमें कांग्रेस का क्या दोष ?

'ठीक इसी प्रकार काशी के पण्डित-समाज में भी कई नकली पण्डित घुसे हुए हैं। जिनके कारण सारा पण्डित-समाज बद-नाम हो रहा है।

'तभी तो बाबू सम्पूर्णानन्द को ब्राह्मण सावधान शीर्षक लेख छापना पड़ा—बाबू दुलाकीदास ने कहा। 'हाँ भाई घर का अख-बार है। जो चाहे छापो। पर इतना अवश्य है कि मुंशी संपूर्णानंद हमेशा तो नहीं, हाँ कभी-कभी ठिकाने की बातें भी करते हैं। इतना छापने पर भी ब्राह्मण नहीं सावधान हुए और विरोधी दल से मिले हुए हैं। खैर ऐसे लेखों के लिए मैं तो यही प्रार्थना करूँगा कि ईश्वर मुंशी सम्पूर्णानन्द को और भी अधिक सुबुद्धि

दे। मैं वास्तव मे उनका बड़ा अनुगृहीत हूँ। विद्वानों का कहना है कि आलोचक अपना मित्र है। जो निन्दा करता है, दोष दिखलाता है, वह अपना शत्रु नहीं हो सकता।

'अरे मारिए गोली आलोचक फालोचक को, आप भी कहाँ के पचड़े में पड़े! कहाँ भगवान के जन्म की कथा हो रही थी, कहाँ तर्क-वितर्क प्रारम्भ हो गया।

'क्या करें भाई थुलथुल प्रसादजी, मेरा मन स्वयं इस पचडे में पड़ना नहीं चाहता, पर जब लोग प्रश्न करते हैं तो कहना ही पड़ता है! मैं करपात्री जी तो हूँ नहीं, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अलावा शूद्र से चन्दा न लूँ। वे नास्तिक ब्राह्मण से भी चन्दा नहीं लेते, शूद्र की तो बात ही क्या है। पर मेरे यहाँ तो चारो वर्ण आते हैं। और सभी को प्रसन्न रखना मेरा कर्तव्य है। शूद्र लोग यदि ऐसे प्रश्न करें और मैं उत्तर न दूँ तो फिर ये आवें ही क्यों? हाँ यदि मैं भी जान जाऊँ कि अमुक शूद्र या अमुक ब्राह्मण जान-बूझकर तंग करने के लिए प्रश्न कर रहा है और भीतरी नास्तिक है, तो उससे बात भी न करूँ!

हाँ तो पण्डित गजानन मिसिर ने पुनः कथा प्रारम्भ की—श्रीरामचन्द्र के जन्म के समय घड़ी-घण्टे शंख की ध्वनि हुई! रेडियो न बजे। आजकल का समय होता तो ग्रामोफोन और रेडियो ही बजता। उस समय महाराज ने ब्राह्मणों को बुलाया। आज का समय होता तो प्रेस रिपोर्टर बुलाये जाते। गो-दान के स्थान पर किसी विधवाश्रम या हरिजन फण्ड को दस हजार का चेक प्रदान किया जाता। ब्राह्मण-भोजन के स्थान पर मित्रों को 'टी पार्टी' दी जाती। नान्दी मुख श्राद्ध के स्थान पर अखबारों के विशेषांक निकाले जाते। पर भाई साहब यह बात है कि ये अखबार सखबार उस समय सौभाग्यवश थे ही नहीं। विधवाएँ उस समय थीं नहीं; विधवाश्रम बनते कहाँ से। और रहा हरिजन, तो

उस समय सभी हरिजन थे।

'एं पण्डित जी, यह क्या, सभी हरिजन थे उस समय।

'और क्या मेरा तात्पर्य भगवद्भक्तों से है, अछूतों से नहीं, उस समय सभी भक्त थे। पर उनके प्रति प्रेम का व्यवहार था। केवल उन्हें मन्दिरों में घुसेड़ने का नाटक होता था। चमार जूते बनाते थे। चमरौधा पहिनने में लज्जा नहीं आती थी, अब की तरह विलायती कम्पनियों के जूतों की चाट न थी। चमाइने बच्चा पैदा कराती थीं। अब तो बिना लेडी डाक्टर के बच्चा पैदा ही नहीं हो सकता। अब भीतरी प्रेम तो अछूतों से रहा नहीं। उनका रोजगार छीना जा रहा है। केवल मन्दिर में घुसेड़ना ही उनके लिए सुख का कारण कैसे होगा?

पनारू साव ने कहा—नहीं पण्डित जी, उनका रोजगार छीना जा रहा है तो उन्हें दूसरे रोजगार दिए भी तो जा रहे हैं। कितने ही होटलों में रसोईघर का काम मेहतर और चमार करते हैं। हाँ जनेऊ अवश्य पहन लिए रहते हैं, लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए। धोबियों के नाती इस समय बी. ए. एम ए. पास कर रहे हैं। कोई डिप्टी बन रहा है, तो कोई कमिश्नर, यह क्या हरिजन-प्रेम नहीं है। सरकार उनकी पढ़ाई के लिए वजीफे दे रही है।

'हाँ भाई, यह तो युग की विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों के लड़कों को केवल 'जाति' के कारण वजीफा नहीं मिल रहा है, पर धोबी चमारों को धोबी चमार होने के नाते ही वजीफा मिल रहा है। इसमें क्या रहस्य है आप लोग सोच लीजिए।

अच्छा अब आज की कथा यहीं समाप्त होती है। एक बार दस पाँच मिनट तक जय सीताराम जय सीताराम का जप कीजिए।

'पण्डित जी आपने सुना नहीं। हमारे श्रद्धेय श्री डाक्टर

भगवानदास ने अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'बुद्धिवाद बनाम शास्त्रवाद' में लिखा है कि निठल्ले और बेगार लोग ही हरे राम हरेराम चिल्लाते हुए मुहल्ले भर की नींद खराब करते हैं। जनता को चाहिए कि कलेक्टर के यहाँ दरख्वास्त देकर हरि-कीर्तन आदि रुकवा दें।

'अच्छा तो हिरण्यकश्यप ने अवतार ले लिया? तब तो नृसिंहावतार भी अवश्य ही होगा? यह तो अशुभ नहीं, वरन् शुभ संवाद है। इस प्रसन्नता में तो आप चौगुने उत्साह से भगवान के नाम का जप कीजिए।

NATURE CURE (नेचर क्योर अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा)

गोस्वामी तुलसीदास ने क्या ही पते की बात कही है कि 'तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पाँव'। इस कथन की सत्यता का प्रमाण मुझे तब मिला जब मेरे तीन पुत्रों और सात कन्याओं में से हरएक ने बारी बारी से बीमार रहना प्रारम्भ कर दिया। सबसे बड़ा उस साल इण्टर फाइनल की तैयारी कर रहा था। परीक्षा के जब तीन चार दिन रह गये तो अकस्मात् एक दिन उसे सिर-दर्द पैदा हुआ और आध घण्टे के अन्दर ही भस्मायुत बुखार चढ़ बैठा। दूसरे दिन मैं उसके लिए अपने मित्र डाक्टर भादुड़ी के यहाँ गया। सुना डाक्टर भादुड़ी नगरसे बाहर कोई रोगी देखने गये हुए हैं। और किसी डाक्टर पर मेरा विशेष विश्वास नहीं था। मेरी पुरानी खाँसी डाक्टर भादुरी ने ही ठीक की थी। अतः यह समाचार पाकर कि डाक्टर साहब के

शाम की गाड़ीसे लौटने की पूर्ण सम्भावना है, मैं घर लौटा। घर आने पर पता चला कि सबसे छोटी लड़की शन्नो को बर्रे ने काट लिया है जिससे उसका मुँह फूल आया है तथा मँझले सुपुत्र झगड़ू को दस्त आ रहे हैं।

दूसरे दिन जब डाक्टर भादुड़ी को अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् सुबोधचन्द्र को दिखाने के लिये ले आया, तब तक मेरी पहिली और पाँचवीं कन्याएं रन्नो और गिन्नी को भी ज्वर आ चुका था। फलतः डाक्टर भादुड़ी को अकेले मेरे घर में ही पाँच पाँच 'पेशेण्ट' मिल गये। इससे डाक्टर भादुड़ी को सन्तोष हुआ या दुःख यह तो नहीं कह सकता, पर यह बात अवश्य है कि उस दिन फीस और दवा के दाम में मेरी तनख्वाह का एक बटे चार हिस्सा समाप्त हो गया।

ईश्वर की दया से श्रीमान् सुबोधचन्द्रने प्रायः दस दिन बाद पथ्य लिया और मैंने प्रसन्नता का अनुभव किया। पर सन्ध्या को बाजार से लौटने के बाद जब यह संवाद सुना कि मेरी दूसरी और चौथी कन्याएँ आपस में लड़कर दो मरातिब से आँगनमें गिरकर अपनी टाँगे तोड़ चुकी हैं तो मेरी क्या अवस्था हुई होगी, इसका अनुमान पाठक शायद कर सकेंगे।

पूरे डेढ़ महीने बाद मेरी ये दो कन्याएँ चलने-फिरने के योग्य हुईं। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि ये लँगड़ी होने से किसी प्रकार बच गईं नहीं तो घर-द्वार बेंचने पर भी इनका विवाह होना असम्भव होता।

इसके पश्चात् एक सप्ताह जी, पूरे एक सप्ताह तक मेरे परिवार में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। आठवे रोज मैं ज्यों ही दफ्तर जानेके लिए कपड़े पहिन रहा था त्योंही ऊपर से यह सुसंवाद भिजवाया गया कि मेरे कनिष्ठ पुत्र श्रीमान् दुलारेलाल जी को क़ै हो रही है! मैंने मोजा पहिनना बन्द कर दिया और

दौड़ा दौड़ा ऊपर गया। बारे तब तक उनकी तबीयत ठीक हो गई थी। उनकी अम्मा उनके सिर पर तेल दबा रही थीं। उन्होंने मुझसे केवल इतना ही कहा—और खिलाया करो बाजार की मिठाई। इस हलवासोहन का घी न मालूम कैसा है। सूँघो तो। कितना बदबू कर रहा है। तुम बच्चों को लड़कपन से ही इतना चटोरा बना देते हो। अभी तीन ही साल में इसकी यह हालत है कि घर की चीजे इसे धँसतीं ही नहीं। बडे होने पर तो यह मालूम पड़ता है होटल में ही भोजन करेगा। पचास बार कहा कि मिठाई ही खिलानी है, तो घर की बनी खिलाया करो। बाजार की सड़ी, कोकोजम की बनी, मिठाइयाँ खा खाकर अपना स्वास्थ्य तो चौपट करते ही हो, लड़कों को भी बिगाडते हो।

अस्तु इस संक्षिप्त तथा सारगर्भित व्याख्यान को सुनकर उसे हृदयंगम करने की चेष्टा करता हुआ, मैं सीधे बैठकखाने में आया और बिना मोजा पहिने ही जूता पहनकर साइकिल उठाने के अनन्तर भागा दफ्तर की ओर, कारण साढ़े दस बज चुका था और इस बात की सम्भावना भी थी कि आज बडे बाबू बडा बड़बड़ाएँगे। इस भाषण या व्याख्यान का वह प्रभाव मुझपर अवश्य पड़ा कि उस दिन दफ्तर से [illegible]टते समय मैं कोई भी मिठाई न ला सका।

मेरी तीसरी और छठीं कन्याओं को यह सोचकर बडा दुःख हो रहा था कि वे बीमार नहीं पड़ रही थीं। उन्हें घर का काम धाम देखना पड़ता था। बाकी लड़कियाँ आराम से पड़ी पडी बेदाना और सन्तरे का अर्क पिया करती थीं। और इन बेचारियों को घर का थोड़ा बहुत काम देखने के बाद स्कूल भी जाना पड़ता था। इस बात को इन लोगों ने शायद अपना अपमान समझा। यही कारण था कि एक दिन इन दोनों ने क्वार के जाड़े में सन्ध्या को नहाना प्रारम्भ किया; यों तो सवेरे भी नियम से नहीं नहाती

थीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दो ही तीन दिनों में इन लोगों की भी इच्छा पूरी हुई और दो की दोनों इन्फ्लूएंजा ऐसे रोग से आक्रान्त हुईं और दो चार दिन की कौन कहे पूरे दो महीने चारपाई पर विश्राम ही करती रहीं।

मेरी 'कैजुएल लीव' समाप्त हो चुकी थी, फलतः उसके अतिरिक्त भी चार दिनों की छुट्टी, तनख्वाह कटाकर लेनी पड़ी। 'मेडिकल लीव' तो मिल सकती नहीं थी, कारण मैं तो बीमार था नही। यद्यपि मेरे दफ्तर के कितने ही बाबू लोग अपनी श्रीमतीजी की बीमारी में अपने लिए मेडिकल लीव भी ले लेते हैं तथा कितने ही झूठो मेडिकल लीव ले लेकर लखनऊ तथा आगरे में अपने साले तथा साथियों के साथ सिनेमा भी देखा करते हैं। पर उचित कहिए या अनुचित मैंने झूठी सर्टिफिकेट लिखाकर मेडिकल लीव लेना पसन्द नहीं किया, यद्यपि मेरे मित्र डाक्टर भादुड़ी भी मुझे सर्टिफिकेट देने को सब प्रकार से तैयार बैठे थे। मेरे सर्टिफिकेट न लेने पर उन्हें कुछ दुःख भी हुआ।

इधर मेरे परिवार में एक सबसे उल्लेखनीय घटना घटी। अर्थात् मेरे गाँवसे मेरे एक रिश्ते की चाचीजी, बीमारी की अवस्था में मेरे यहाँ पहुँचीं। नगर-निवासी जब बहुत बीमार होते है तो गाँव चले जाते हैं। इसी कारण गाँववालों को जब बचने की आशा नहीं रहती तो वे नगरों में अपने किसो सगे-सम्बन्धी के घर पदार्पण किया करते हैं। ये चाचोजी दमा, के रोग से पीड़ित थीं। आठ दस वर्ष तक गाँव में ही चिकित्सा कराती रहीं, पर जब विशेष लाभ नहीं हुआ तो मेरे यहाँ आईं। मेरा कर्तव्य ही था कि मैं इनके लिए चिकित्सा का प्रबन्ध करूँ। फलतः मैंने डाक्टर भादुड़ी से परामर्श किया। उन्होंने रोगी को देखकर कुछ निराशा प्रकट की। बोले—दवा देते चलिए, पर विशेष आशा मैं आपको नहीं दिला सकता। रोग पुराना हो

गया है। आरम्भ में ही मैंने हाथ लगाया होता, तो यह ठीक ही हो गया होता। गाँव में किसकी चिकित्सा होती थी?

चाचीजी से पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ कोई एक हजाम था जो होमियोपेथिक डाक्टरी की दूकान खोलकर गाँववालों की चिकित्सा करता था। उसी ने इनकी तीन साल तक दवा की जिसमे इनके सभी चाँदी के गहने बिक गये।

डाक्टर भादुडी हँसने लगे। बोले—यही तो कहता हूँ गाँवों में ही क्या, शहरों में भी ऐसे धूर्तों की कोई कमी नहीं है। चिकित्सा-शास्त्र का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं, पढ़ा लिखा खाक नहीं, डाक्टर बन बैठे। दस बीस रुपये देकर नकली डिप्लोमा मंगा लिया, बस छुट्टी। टाइफाइड की दवा, बवासीर में, और फोड़े की दवा दमा में देने लगे। मूर्ख जनता समझती है कि ये लोग भी सुशिक्षित डाक्टर हैं। फलतः पैसे देकर भी बेवकूफ बनती है। चाचीजी से कहिए कि परहेज के साथ मेरी दवा खाती चलें, आगे भाग्य मे जो लिखा होगा, वह तो होगा ही।

भादुडी के चले जाने पर चाचीजी ने मुझसे कहा—बेटा ई डाक्टर का कहत रहलेन। मोरे गउवाँ में त ओनके अस कोई डाक्टरै नाहीं बाय। ई बात दूसर हव कि ओनकर बाप नाऊ क पेशा करत रहल, पर हमरे सुनै में त आयल रहल कि ई डाक्टर कलकत्ता मे से विलायत पास कैके लौटलेन हॅय। कनी कवन कवन औजार भी रखले हउवन। एक जने क दाँत उखाड़ के नया दाँत भी बनाय देहलेन।

एक सप्ताह तक डा० भादुड़ी की ही दवा होती रही। पर चाचीजी का रोग बढ़ता ही गया! बात यह हुई कि चाची जी भोजन पानी मे परहेज तनिक भी नहीं करती थीं! मेरी पत्नी से कभी कहतीं—बहू, आज मोर मन हलुवा खाये क करत हव।" तो कभी कहतीं—कढ़ी-भात खइले बहुत दिन भयल! तनी

आज बनवतू त खाइत ! का जानी जियब का जानी मरब ! खाय पी लेहले रहब त सन्तोख रही।" श्रीमती जी क्या करतीं। यदि न बनातीं, तो चाचीजी यही समझतीं कि उनका अपमान किया जा रहा है। फिर चाचीजी सगी चाची भी न थीं कि उनसे कुछ कहा सुना जाता ! अपने सगों से तो हम दो कड़ी बातें भी कर सकते हैं, गैरों से बात करने में बड़ा सावधान रहना पड़ता है कि कहीं अपना अपमान न समझ लें और चाचीजी कोई दूधपीती बच्ची तो थीं नहीं जो अपना हानि-लाभ सोचने मे असमर्थ हों। मेरी श्रीमतीजी के बच्चे यदि बीमार होते और हलवा या कढ़ी माँगते तो वे उनकी पीठपूजा भी कर देतीं ! पर चाची जी की पीठपूजा करने का उन्हें कोई अधिकार ही नहीं था। फलतः पीठपूजा की व्यवस्था के अभाव में चाचीजी निर्विघ्न रूप से अपनी पेटपूजा करती रहीं।

चाचीजी के साथ उनके देवर अर्थात् मेरे चाचाजी भी आये थे ! आये तो वे स्वस्थ की दशा में ही थे, पर यहाँ आकर भोजन में कुछ व्यतिक्रम होने से उन्हें संग्रहणी हो गई ? कहने की आवश्यकता नहीं कि भोजन के मामले में वे चाची जी से भी चार हाथ बढ़कर थे। यहाँ आकर उन्होंने जीवन में पहिली बार चाय पी ! इस चाय का चस्का उन्हें ऐसा लगा कि वे एक प्याले से सन्तुष्ट ही न होते थे। इसलिए उन्होंने सुबह शाम दोनों समय एक एक लोटा चाय पीना प्रारम्भ किया। एक दिन सायंकाल 'कण्ट्रोल शाप' से चीनी न आ सकी ! पर बिना चाय पिये चाचाजी को चैन नहीं ? अतएव उन्होंने चीनी के स्थान पर तीन चार पिड़िया गुड़ ही मसल कर काम चलाया।

ऐसी अवस्था में संग्रहणी न होती तो क्या फीलपाँव होता ? संग्रहणी हुई और खूब मजे में हुई। दिन भर में बीस पचीस बार लोटा लिए शौचालय की ओर धावमान होने लगे ! लीजिए,

चाची के बाद चाचा का नम्बर आया। अब मुझे विश्वास हो गया कि यदि ऐसे सद्बुद्धि चाचा, दस पाँच की संख्या में इस धरातल पर अवतीर्ण हो जायँ तो आगरा और बरेली की जन-संख्या में अवश्य वृद्धि हो जायगी!

मैं कपड़े पहन कर डाक्टर भादुड़ो के यहाँ जाने लगा। (हाँ, भई! मियाँ की दौड़ मस्जिद तक, और मेरी दौड़ डाक्टर भादुड़ो तक) इतने मे हो चाचाजी ने कहा—बचवा, डाक्टर फाक्टर के यहाँ मत जाओ! कोई विशेष चिन्ता को बात नहीं है। अपने आप ठीक हो जायगा।

"जो हाँ, ठीक तो हो ही जायगा, फिर भी एक बार डाक्टर को दिखला देना तो चाहिए ही। वे एकाध खुराक दवा देंगे तो जरा जल्दी आराम हो जायगा मैंने चाचाजी को समझाते हुए कहा।"

'अरे राम राम। डाक्टर की दवा रँगरेजी दवा तो भइया चाहे मेरे प्राण भी निकल जायँ तब भो मैं पीने से रहा। मेरे चाचा को जहरबाद हो गया था, पिता को भगन्दर, फूफा को बवासोर तथा मौसी को पिलेग, ये लोग सबके सब मर गये, पर डागडरी दवा नहीं पी। भइया धरम से बढ़कर जान नही होती! तुमलोग अँगरेजी पढ़े हो, रुपये में आठ आना क्रिस्तान हो गये, पर भइया हम देहाती गँवार अब भी अपने धरम करम को नहीं छोडे हैं? तुम लोग हमें गवाँर कहकर हँसोगे, पर हँस लो! तुम्हारे हँसी उड़ाने से हमारा कुछ बिगड़ थोडे ही जायगा।"—चाचाजी ने एक साँस में इतना कह डाला।

चाचाजी के इस धार्मिक श्रद्धाभाव को देखकर मुझे सन्तोष तो हुआ कि अभी हमारे भारत में ऐसे धार्मिक पुरुष वर्तमान हैं जो जान निकल जाने पर भी विदेशी दवा का व्यवहार नहीं करते। कमसे कम उन लोगों से तो ये अच्छे ही हैं जो विला-

यती सिगरेट पीते हुए, स्वदेशी-प्रचार का दम भरते हैं। पर मुझे भय भी हुआ कि कहीं ये दवा के अभाव में सेल्ह गये तो क्या होगा। मैंने साहस करके कहा—मगर चाचाजी, हमारे यहाँ आपद्धर्म की भी व्यवस्था तो है। आपत्ति काल में कभी कभी धार्मिक बन्धनों को ढीला भी कर देने की व्यवस्था है।

'होगी व्यवस्था! हुआ करे। हमें उससे क्या? वह धर्म ही क्या जो आपत्तिकाल मे बदल जाय! धर्म भी क्या खिलवाड़ है जो बदल जाया करेगा और सच पूछो तो धर्म का पालन तो आपत्तिकाल में ही करना चाहिए। इसी में मर्दानगी है। यह नहीं कि अपने सुविधानुसार उससे बदलते चले गये! फिर पुराणों में यह क्यों लिखा है कि अकाल पड़ने पर विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस खाया था?" मैंने तुरन्त ही प्रश्न किया। "अच्छा ऐसा भी लिखा है क्या? चाचाजी ने अट्टहास किया— गोसाईंजी ने ठीक ही लिखा है कि जिमि पाखण्डवाद तें लुप्त होहि सद्ग्रन्थ। भइया मैंने तो कुछ विशेष पढ़ा नहीं है, पर इतना अवश्य ही, अपने गाँव में एक व्यास जी के मुंह से सुना था कि हमारे पुराणों में बहुत से क्षेपक भी भर दिये गये हैं। गोसाईं जी ही सात काण्ड रामायण लिख गये, पर अब आठ काण्ड रामायण के दर्शन होते हैं। एक लवकुश काण्ड भी जोड़ दिया गया। शैव पुराणों में विरोधियों ने विष्णु की तथा वैष्णवपुराणों में दुष्टों ने शिव की निन्दा के वचन भर दिये। व्यासजी महाराज कह रहे थे कि हरएक धर्म मे ऐसी पाखण्डपूर्ण बातें मिला दी गई हैं। वर्णसंकरी सृष्टि के जमाने के आदमी यदि पुस्तकों में ऐसी बाते न भरें तभी आश्चर्य! अपनी तपस्या से इन्द्र को भी थर्रा देनेवाले विश्वामित्र मांस, सो भी कुत्ते का मांस खाएँगे। चाचाजी ने कुछ देर सुस्ता कर फिर कहना शुरू किया—बेटा मैं गँवार आदमी क्या जानूँ।

पर यह सब अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि तुम सब पढ़े-लिखे हो, मैं तुम्हें नहीं कहता, कारण स्वर्गीय भइया के पुण्य से तुममें अभी धर्म-भाव है, आजकल लोग धर्म-कर्म को खिलवाड़ समझते हैं। बात यह है कि धर्मको मानने से उन्हें मनमाने सांसारिक सुख भोग में रुकावट पड़ेगी। इसीलिए ऐसे दुष्टों ने हमारे ऋषियों, अवतारों तक के बारे में मनगढ़न्त भद्दे किस्से गढ़ डाले हैं जिससे स्वयं उनलोगों को भी बुराई करने के लिए नजीर मिल सके। ऐसे लोग कह सकते हैं कि जब देवताओं ने ऐसा किया तो हम क्यों न करें! पर उन्हें यह कौन समझावे कि ऐसा किसी देवता ने किया कब। यह सब हमारे धर्म-ग्रन्थों की लीपा-पोती इन्हीं विधर्मियों के हाथों हुई है।'

ठीक ऐसी ही बातें मैंने किसी बड़े जल्से में किसी भारी इतिहासवेत्ता विद्वान् के मुँह से कई वर्ष पूर्व सुनी थीं! पर उन्हें भूल गया था। आज अपने इस देहाती अपढ़ सम्बन्धी के मुँह से वैसी ही बातें सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। क्षणभर के लिए मुझे अपने ऊपर लज्जा भी आई कि मैं ग्रेजुएट होकर भी अपने धर्म और सम्प्रदाय के प्रति कितनी अश्रद्धा रखता हूँ तथा प्राचीन बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता हूँ।

चाचा जी शायद मेरा मनोभाव ताड़ गये! कुछ मुस्कराते हुए बोले—बेटा इसमें तुम्हारा या तुम्हारे समान पढ़े-लिखे लोगों का दोष नहीं। दोष है तुम्हारी शिक्षा का, तुम्हारे संस्कार का। तुम्हारी शिक्षा ही ऐसी हुई है। तुमलोगों को यह सिखलाया ही जाता है कि तुम्हारे पूर्वज मूर्ख थे। और आजकल के ये नये बाबू लोग पण्डिताई की खान हैं। मुझे इस समय एक कहानी याद आ रही है। एक ब्राह्मण देवता थे। उन्होंने बच्चों को दूध पिलाने के लिए एक बकरी खरीदी। बकरी को कन्धे पर लेकर घर की ओर चले। राह में तीन ठगों ने बकरी को देखा। देखते

ही जबान से लार टपकने लगी। सोचा किसी उपाय से पण्डित को बेवकूफ बनाकर बकरी हथियाना चाहिए। फिर तो तीनों ठग, उसी रास्ते में थोड़ी थोड़ी दूर पर बैठ गये। जब पहिले ठग के पास पण्डितजी पहुँचे तो उसने बड़ी श्रद्धा भक्ति से उन्हें प्रणाम किया और कहा—पण्डित जी, यह कुत्ता तो आपका बड़ा सुन्दर है। कहाँ पाया आपने इसे ?

पण्डित जी बेहद हँसे और बोले—वाह भाई। तुम्हें दिनौंधी तो नहीं हो रही है जो बकरी को कुत्ता समझ रहे हो। मैंने बच्चों के दूध पीने के लिए अभी २५) रु० में यह बकरी ली है। दोनों जून मिलाकर साढ़े चार सेर दूध देती है। और तुम इसे कुत्ता बता रहे हो।

ठग ने ऐसा मुँह बनाया मानों आसमान से गिर पड़ा हो। उसने पण्डितजी से क्षमा माँगी। बोला—पण्डितजी माफ़ कीजिएगा मैंने तो इसे कुत्ता समझा था, और अब भी मुझे तो यह साफ कुत्ता ही दिखलाई पड़ रहा है। पर आपकी बात कैसे काट सकता हूँ, आप झूठ थोड़े ही कहेंगे। ब्राह्मण होकर आप भला अपने होश हवास के ठीक रहते कुत्ते को कन्धे पर बिठायेंगे। मैं आपकी ही बात मान लेता हूँ। जो आप कहें वही ठीक।

पण्डित जी बड़बड़ाते हुए आगे बढ़े। आधा मील भी न गये होंगे कि रास्ते में दूसरा ठग मिला और बोला—कहिए पण्डित जी यह कुत्ता कहाँ लिये जा रहे हैं। लाइए मैं पहुँचा दूँ। कोई देखेगा तो क्या कहेगा कि बाँभन होकर कुत्ते को कन्धे पर लिये हैं।

इस बार पण्डितजी के चौंकने की बारी थी। उनके मन में सन्देह ने घर कर लिया। कौन जाने कि यह आदमी ठीक कह रहा हो। शायद मुझे ही दिनौंधी हो गई हो और मैं ही कुत्ते को बकरी समझकर उठा लाया होऊँ। क्योंकि एक आदमी और भी सन्देह प्रकट कर चुका है। पण्डितजी ने बकरी को कन्धे

पर से उतारकर उसे बड़े गौर से देखा। कहीं तो नहीं। सन्देह की तनिक भी गुंजायश तो न थी। साफ बकरी थी। इस दूसरे ठग को भी फटकारते हुए आगे बढ़े। दूसरे ठग ने तब केवल इतना ही कहा—हमें क्या? हम तो आपके ही फायदे के लिए कह रहे थे। कोई देखेगा तो आपकी ही हँसी उडावेगा। पर जब आपको अपनी ही आँखों पर विश्वास है और संसार के बाकी सब आदमियों को आप अन्धा समझते हैं तो मुझे क्या? कुत्ता छोड़ आप गधे को कन्धे पर बिठाइए।

पण्डितजी के हृदय और मस्तिष्क पर 'सन्देह' का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। फटकार कर चलने को तो वे चल दिये, पर अब स्वयं उन्हें अपनी बुद्धि और आँखों की गवाही पर विश्वास न रहा। वे संशय रूपी अजगर की लपेट मे आ चुके थे। रह रह कर सोचते थे कि एक होता तो एक। दो दो ने इसे कुत्ता समझा। यह कैसे हो सकता है कि ये दो के दोनों मूर्ख हों। अवश्य ही मुझसे कुछ गल्ती हो गई है। मुझे ही दिनौंधी हो गई है। आखिर इन दोनों का इसमें लाभ क्या था जो बकरी को कुत्ता बताया! व्यर्थ ही वे दोनों झूठ क्यों बोलेंगे। यही सब सोचते हुए वे चले जा रहे थे कि तीसरे ठग ने उन्हें देखा और इन्हें देखते ही चिल्ला उठा—अरे बापरे! यह क्या बॉभन होकर कुत्ते को कन्धे पर बिठाया! धन्य हो महाराज! तनिक तो लजाते। पर जो हो कुत्ता है तो बड़ा सुन्दर!

पण्डितजी मे अब इतना साहस नहीं रह गया था कि वे बिना हिचकिचाहट के इस तीसरे आदमी को फटकारते और न यही साहस रह गया था कि बकरी को कन्धे पर से उतारकर सत्यासत्य का निर्णय करते। उन्होंने तुरन्त बकरी को कन्धे पर से फेका और नदी में नहाने दौड़े। ठगों की अभिलाषा पूर्ण हुई। पण्डितजी के २५) रु० का सदुपयोग उन्होंने अच्छी तरह किया।

समझे बचवा ठीक यही दशा हमलोगों की इस समय हो रही है। ठगों ने हमें ऐसा चकमा दिया है कि हमने भी बकरी को कुत्ता समझ लिया है।

मैं मन्त्र-मुग्ध की भाँति अपने इस देहाती, नाते गोते के चाचा की सारगर्भित कहानी को सुन रहा था। कितने पते की बात इस कहानी के बहाने वे बता रहे थे। कितने सुन्दर ढंग से यह कहानी हमलोगों की इस अवस्था पर घट रही थी। यद्यपि चाचा महाशय न बी० ए० थे न एम. ए. और न कोई 'लीडर' थे, न उपदेशक, पर कितना तथ्यपूर्ण इनका कथन था। सचमुच ही हमलोग अपने धर्म की ओर से उदासीन हो रहे हैं। अब मेरी समझ में आया कि भारत के अन्दर रहकर भी मुट्ठी भर मुसलमान क्यों इतने निःशंक हैं। अपनी धार्मिक कट्टरता के ही कारण। हमलोग भले ही अपने धर्म-कर्म को छोड़ दें, पर वे ऐसा स्वप्न में भी नहीं करेंगे। यही कारण है कि गान्धीजी को मिस्टर जिन्ना को मनाने के लिए दौड़ दौड़ कर मलाबार हिल जाना पड़ता है। पर जिन्ना नहीं हिलते। यद्यपि यह 'हक' के लिए हकनाहक झगड़ा है। सूत न कपास जुलहन से मटकौवल ही है। 'स्वराज्य' मिला नहीं, और न मिलने की कोई आशा ही है, पर बाँट बखरा पहिले से ही शुरू! हमारा हिन्दुस्तान तो विचित्रताओं का देश ही ठहरा।

मुझे यह भी याद आया कि अभी उस दिन अखबार में छपा था कि कराची में एक दूकानदार पर (पता नहीं वह हिन्दू था या यवन) इस बात के लिये मुसलमानों ने मुकदमा चलाया था कि कुरान के एक फटे पन्ने पर कोई गरममसाला, या हींग जीरा बाँधकर किसी ग्राहक के हाथ बेंचा! मुकदमा जोर शोर से प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट की इजलास में चला! अन्तिम दिन निर्णय सुनने के लिए हजारों की भीड़ एकत्र हुई थी। अभियुक्त को ६ महीने

की कड़ी कैद का दण्ड मिला। क्यों ? यह सब किसलिए ? धार्मिक कट्टरता के कारण ! पर हमारे हिन्दुओं में है यह दम कि गीता, भागवत, वेद या पुराण के फटे पन्ने पर सौदा बेचने-वाले को दंडित करावें। यहाँ तो धर्मग्रन्थों और उनके निर्मा-ताओं को गालियाँ देने का फैशन हो गया है।

मैंने डाक्टर को दिखलाने का निश्चय त्याग दिया। पास ही के एक मुहल्ले मे एक वैद्य जी रहते थे। नाम था उपासानन्दजी; उन्हीं को लिवा लाया। उन्होंने चाचाजी की नाड़ी देखी पेट की भी परीक्षा की; बोले—कुछ विषाक्त वस्तु पेट में इकट्ठा होती रही है। कुछ अफीम आदि खाते रहे हैं क्या ? पित्त भी बढ़ गया है। मीठा अधिक खाने से।

'जी नहीं अफीम तो नहीं खाते। भंग भी नहीं छूते। चाचा जी को व्यसन तो कोई नहीं। हम लोगों के शहरी व्यसन 'चाय' को थोड़ी अवश्य अपना लिया है। मैंने उत्तर दिया।

'हॉ, यही तो बात है। आप लोग चाय को भॉग और अफीम से खराब नहीं समझते। कारण सद्यः उसका कुप्रभाव नहीं दिखाई पडता। धीरे-धीरे उसके पंजे में आदमी फॅसता है। अफीम और भॉग का नशा तुरन्त होता है। पर अफीम और भांग तो नशा ही करके रह जाते हैं, चाय तो अन्त में सर्वनाश करके छोडती है। पहला काम जो चाय करती है वह है अग्नि-मांद्य उत्पन्न करना। पाचन-क्रिया को बिगाड़कर यह तमाम ॲतड़ियों को चौपट कर डालती है।

खैर, वैद्यजी ने चाचाजी को दस पुड़िया दवा दी और बोले 'एक काढ़ा लिखवाता हूँ, लिख लीजिए। इसी काढ़े के साथ दवा लेनी होगी। हॉ, लिखिए—चार आने भर अतीस, रुपये भर बेल का गुद्दा, दो दो आने भर लोध, धनियाँ, घोड़ा बच, धाय के फूल, इन्द्रजौ तथा सौंफ। पाव भर पानी मे पकाइए, जब

छटाँक रह जाय, तो छानकर ताड़मिश्री डाल दीजिए ! कुछ गुनगुना रहे तभी एक पुड़िया दवा खिलाकर ऊपर से काढ़ा पिला दीजिए। भोजन कुछ मत दीजिएगा। आज एकदम लंघन कल यदि पेट में गुड़गुड़ाहट न हो और भूख मालूम हो तो केवल बेल का मुरब्बा दीजिएगा।

चाचीजी को जब मालूम हुआ कि वैद्यजी आये हैं, तो उन्होंने भी आग्रह किया कि उन्हें भी दिखलाया जाय। फलतः वैद्यजी ने चाचीजी की स्वास्थ्य-परीक्षा की। जब उन्हें मालूम हुआ कि डाक्टर की दवा हो रही थी, तो अपना सिर ठोंका। कहने लगे—यही तो कहता हूँ। आजकल लोगों को अपने प्राचीन ऋषियों की चिकित्सा-पद्धति पर विश्वास रहा नहीं। दौड़ते हैं कल के छोकड़े इन विलायती डाक्टरों के पास। ये क्या जानें दवा करना। नाड़ी की परीक्षा करने का इन्हें ढग ही नहीं मालूम ! एकमात्र ब्रह्मास्त्र थर्मामीटर और स्थेटिस्कोप हैं। यहाँ तो नाड़ी पकड़ी और सारा कच्चा चिट्ठा बखान दिया ! वहाँ डाक्टर लोग छाती पर यन्त्र लगाकर ठुकठुक ठुकठुक किया करते हैं, पता खाक नहीं चलता। जरा बुखार और खाँसी की शिकायत पैदा हुई कि तपेदिक ही बता दिया। मेरे एक सम्बन्धी को दमा की शिकायत थी। उसे दूध-संतरा बता आये, जिससे रोगी मरते मरते बचा। वह तो कहिए कि मैं समय से वहाँ पहुँच गया।

चाचीजी के लिए भी एक काढ़े की व्यवस्था की गई। उन्हें कोई मुरब्बा आदि नहीं बताया गया, जिससे वे कुछ दुखी भी हुईं। पर चाचाजी के लिए जब बेल का मुरब्बा आया तो उसमें से दो तीन मुरब्बे उन्होंने भी उदरस्थ कर ही डाला। फल यह हुआ कि चाचीजी को कब्ज की शिकायत हो गई और श्वास-कष्ट बढ़ गया। मुझे श्रीमतीजी से यह भी पता चला कि उन्होंने भगिनी को फुसलाकर उससे मीठा अचार भी माँगकर खाया था।

चाचाजी की संग्रहणी ज्यों ज्यों अच्छी होती जाती थी, त्यों त्यों चाचीजी का दमा उग्र होता जाता था। चाचीजी में एक बुरी आदत भी थी कि जहाँ-तहाँ थूका करती थीं। इससे रोग के फैलने का भी भय था। खाँसी-दमा-सरीखे रोग के कीटाणु भयंकर होते हैं। बच्चों को भी कहीं रोग न हो जाय, इस भय से उनकी माँ घबड़ाई रहती थीं। पर चाचीजी से कौन बोल सकता था। दिन भर इधर उधर खाँसते थूकते फिरना उनका काम था।

जब खाँसी बहुत बढ़ गई और वैद्यजी के काढ़े से भी कोई लाभ नहीं हुआ तो एक हकीमजी बुलाये गये। वैद्यजी का काढ़ा तो बुरा नहीं था, पर वह स्वाद में विशेष कड़ुवा था। और चाचीजी की जीभ पाँच हाथ की थी। वे भला कड़ुवी दवा कैसे पी सकती थीं। उन्होंने हकीमजी से सबके पहिले यही कहलाया कि दवा मीठी होनी चाहिए। हकीम जुत्तावअली ने जब उन्हें खमीरा गावजुमा और कई मीठी मीठी चटनियाँ बताईं तो चाचीजीने उन्हें रोम-रोम से आशीर्वाद दिया और सबसे बड़ी बात यह कि आँवले का मुरब्बा भी बता गये। अब भला चाची जी के आनन्द का क्या ठिकाना था। उन्होंने सुबोधचन्द्र के द्वारा दो सेर आँवले का मुरब्बा मँगवाया। मैंने समझा कि चलो, कम से कम दो हफ्ते के लिए दवा और पथ्य सभी की व्यवस्था हो गई। जब तीसरे ही दिन मेरी श्रीमतीजी ने, मेरे बाजार जाने के समय, मुझसे यह कहा कि दो सेर आँवले का मुरब्बा भी लेते आना, तो मेरे होश उड़ गये। मैंने कहा—क्यों मुरब्बे तो अभी परसों ही सुबोध ले न आया था। या उसे बाजार में मुरब्बा ही नहीं मिला। एफ० ए, बी० ए० ये लौण्डे हो जाते हैं, पर सामान खरीदने का शऊर नहीं। उसे दुकान ही न मिली होगी। मुरब्बा लावेगा कहाँ से। कह दिया था कि चौक में नुक्कड़पर ही मुरब्बे की दुकान है, पर जब उसे दुकान

दिखाई पड़ी हो तब तो। आस्ट्रेलिया का भूगोल याद है, अपने मुहल्ले का पता ही नहीं!

मेरी पत्नी जब आगे न सुन सकीं तो मुँह बिचकाती हुई बोलीं—जब तुम्हारी जबान खुलती है तो रुकने का नाम ही नहीं लेती। सुबोध को दस बात कह गये। वह बेचारा तो परसों सवेरे ही मुरब्बे ले आया। पर चाचीजी कल शाम तक ही समाप्त कर दें, तो सुबोध क्या करे! दवा की चीज दवा की तरह व्यवहार करनी चाहिए। वे तो उसो मुरब्बे का भोजन करने लग गईं! दिन भर में जब देखो चाचीजी मुरब्बा खा रही हैं। अरे बापरे दो दिन में दो सेर मुरब्बे चट कर गईं! पेट है या भँडार?

मैंने सोच लिया कि यदि यही ढर्रा रहा तो इस महीने का वेतन चाचीजी के मुरब्बे में ही समाप्त हो जायगा। पर करता क्या। चाचीजी ठहरीं। हिन्दू-परिवारों की ऐसी व्यवस्था ही है। मैं उन्हें अपने यहाँ से चले जाने को तो कह नहीं सकता था। और मेरी पत्नी उन्हें मुरब्बे खाने से रोक भी नहीं सकती थीं। गाँव में जाकर यही कहतीं कि फलाने की बहू बड़ी सूमड़िन है। किसी का खाना-पहिनना नहीं देख सकती।

मेरे विवाह के पूर्व ही मेरी माँ का स्वर्गवास हो चुका था। इस कारण मेरी श्रीमती 'सास' के दुलार से वंचित रह गई थीं। इस अभाव की पूर्ति चाचीजी ने कर दी। रोज नई नई चीजें बनवाकर खातीं और रात्रि में सोते समय लगतीं कहने—गोड़वा बड़ा बत्थत बाय। गउवाँ में रहली त ई बड़ा आराम रहल कि गोड़ दबवावत रहली। इहाँ तवन रनुई से एक दिन कहली कि बचवा तनी हमार गोड़वा मीस दे त ऊ हमसे लड़े के तयार होय गइल। सहर क मजुन्निन क ह हालत कि बरतन मँज-लिन औ चद्दर उठउलिन, चल देहलिन। गाँव में त दिन क

दिन पहर रात क रात एक पैर से खड़ी रहलिन। लड़किन के मोसब घसब, नहवाइब धोआइब से लेके हमहन क गोड़ दबावैं, धोती कचारै क सब काम करतिन और का मजाल कि तनिकौ अनसायँ। इहाँ तनी सा एक दिन आपन धोती कचारै के कहलों तवन मजुन्नियाँ काटै दउडल !

इन सब भूमिकाओं का संकेत मेरी पत्नीजी समझ जाती थीं और चाचीजी के पैर दबाने बैठ जाती थीं। मेरी श्रीमतीजी में यह एक विलक्षण गुण है कि वे 'सेवा' को अपना धर्म समझती हैं। ग्रेजुएट नहीं हैं, फिर भी सातवें आठवें तक की शिक्षा पाई ही है। सवेरे से शाम तक फिरिहरी की भाँति काम किया करती हैं। सात सात बच्चों को सम्हालना इन्हीं का काम है। ऊपर से चाचीजी की सेवा का भार इनपर आ पड़ा। मैं बल्कि ऊब जाता था। पर ये बिना घबड़ाये प्रसन्नतापूर्वक काम-धाम सम्हाले थीं।

वैद्यजी का काढ़ा कड़वा था। इसलिए बिल्कुल लिया ही नहीं गया। हकीमजी की चटनियाँ मीठी थीं जिससे एक एक बार में आठ आठ मात्राएँ खाई गईं। इस 'अति' का परिणाम यह हुआ कि रोग बढ़ने लगा और अब चाचीजी ने पैर दबवाने की मात्रा बढ़ा दी। मैं यह सब देख-सुनकर, बेहद झल्लाता था, पर पत्नीजी मुझे समझा-बुझाकर शान्त कर देती थीं।

एक दिन दफ्तर में यह चर्चा छिड़ी कि लखनऊ के एक नेचुरोपैथ (प्राकृतिक चिकित्सक) हमारे नगर में पधारे हैं। बड़े बड़े असाध्य या दुःसाध्य रोगी उनकी चिकित्सा से अच्छे हो रहे हैं। सचमुच प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त बड़ा ही वैज्ञानिक है। दवा-दारू से रोग बढ़ने के सिवा घटता नहीं। इस पद्धति में तो केवल प्रकृति का सहारा लेना पड़ता है। थोड़ा 'डायट' ठीक करना पड़ता है। कुछ विशेष प्रतिक्रियाएँ करनी पड़ती हैं।

मेरे मन में भी आया कि एक बार चाचीजी को इन डाक्टर

महोदय को दिखला दिया जाय ! मै उन्हें अपने यहाँ लिवाने गया तो वे बोले—आप रोगी को मेरे इस बगीचे में ही लिवा लाइए तो अधिक अच्छा ! यहाँ खुले मैदान में रोग की परीक्षा में सुविधा होगी। बन्द घरों में रोगों का ठीक निदान हो सकता।

डाक्टर साहब के यहाँ भी कई रोगी टिककर इलाज कराते थे ! उन्होंने भी मुझे यह राय दी कि आप रोगिणी को यहाँ ही छोड़ जाइए ! यहाँ नर्सें हैं, वे देखभाल कर लेंगी। अभी तो मुझे आपके शहर में आये केवल तीन महीने हुए हैं। मैं अब यहीं रहने का विचार कर रहा हूँ और शीघ्र ही कोई दूसरा बगीचा इस कार्य्य के लिए लूँगा।

मैं चाचीजीको लिवा गया, साथ में चाचाजी भी गये। डाक्टर साहब ने चाचाजी को देखा तो तुरन्त कहा—ओह ! यह रोग कौन बड़ी बात है, इससे हजार गुने कठिन रोगियों को मैंने एकाध महीने मे ठीक कर दिया है। आपको कोई दवा न पीनी होगी। आप चाहें तो हमारे यहाँ इन्हें भर्ती कर सकते हैं।

पर मेरे घर में इस प्रस्ताव के विरुद्ध थीं। वे डरती थीं कि ऐसा न हो कि चाचीजी इसे अपमान समझे ? वे कहीं यह न समझ बैठें कि उन्हें ऊबकर लखेद दिया गया है। इसलिए घर पर ही रखकर इलाज कराना तय हुआ।

चाचीजी ने एनिमा बड़ी सही-शिफारिश के बाद लिया। भोजन के लिए उन्हें कच्चे टमाटर और मूली के पत्ते दिये गये। दूसरे दिन उन्हें दूध फाड़कर दिया गया। तीसरे दिन उन्हें एक तोला रेंड़ी का तेल पिलाया गया। चौथे दिन उन्हें एक ग्लास गरम पानी में दो नीबू का रस निचोड़कर दिया गया। पाँचवे रोज फिर दिन भर लंघन कराया गया। छठे दिन आटा सानकर उसे गरम पानी में उबालकर रोटी सेंकी गई और उसे चुकन्दर की चटनी और टमाटर के रस के साथ खिलाया गया।

केवल इतना ही नहीं। चाचीजी को रोज एक टब में गर्म पानी में बिठाया जाने लगा। पानी में नमक भी डाल दिया जाता था। उन्हें सवेरे-शाम टहलने की भी आज्ञा मिली थी। पर शहर में आकर भी उनका धड़का नहीं खुला था। गाँव में तो स्त्रियाँ टहलती नही। चूल्हे-चक्की से ही व्यायाम हो जाता है! चाचीजी जब सुनती थीं कि शहर में पुरुष अपनी स्त्रियों के साथ, या केवल स्त्री या पुरुष, अलग अलग टहलने जाते हैं तो उनके कौतूहल का ठिकाना न रहता। मैंने यह प्रबन्ध कर दिया था कि यदि वे चाहें तो मेरी दो एक छोटी लड़कियों और झगड़ू के साथ पार्क में या घाट पर टहल आया करें, पर वे तैयार ही नहीं हुईं। इसलिए वे छत पर टहलने लगीं।

पूरे सात दिनों के बाद चिकित्सा-शैली बदली जानेवाली थी पर छह ही दिनों में चाचीजी को छठ्ठी का दूध याद आने लगा! सातवें दिन मैं जरा देर से सोकर उठा तो क्या देखता हूँ कि चाचीजी और चाचाजी गठरी-मोटरी बाँधकर मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे है! पूछने पर मालूम हुआ कि चाचीजी जरा गाँव जाकर अपना मकान छवाना तथा अपनी देवरानी से भेंट करना चाहती हैं। उनकी देवरानी को लड़का होनेवाला था और आज कल, आज कल लगा था। यह भी पता चला कि दस बारह दिन बाद ये लोग फिर लौट आवेगे। मैंने फिर कोई आपत्ति नहीं की।

पूरे दो महीने बीत गये, पर जब चाचीजी या उनके देवर श्रीमान् चाचाजी दो मे से कोई लौटकर नहीं आया, तो मैंने समझा कि अभी मकान नहीं छवाया जा सका होगा, या उनकी देवरानी का लड़का होना 'पोष्टपोन' कर दिया गया होगा! कौन जाने चाचीजी नेचर क्योर' से ऊबकर ही, गाँव चली गई हों। मेरा सन्देह सत्य मे परिणत हो गया जब मैंने गाँव से आये हुए एक व्यक्ति से सुना कि चाचीजी के परिवार में कोई लड़का न

हुआ न होने की सम्भावना है, वे उसी हज़ाम का इलाज करवा रही हैं। जो कुछ भी हो, इस 'नेचर क्योर' से यदि चाचीजी को कोई लाभ न पहुँचा, तो न सही, मैं तो घाटे में नहीं रहा।

कवि का कार्यक्रम

'पण्डित मुरारीराम को छींक भी आती है तो आप अपने समाचार-पत्र में बड़े बड़े शीर्षक देकर छापते हैं! क्यों? इसी-लिए कि वे कांग्रेस के नेता हैं, और कोई बहुत बड़े नेता भी नहीं जिला कांग्रेस कमेटी के उपसभापति मात्र। सेठ बुलाकीदास की चाची का मृत्युसमाचार, उनका जीवन-चरित देते हुए आपने डेढ़ कालम में छापा था! इसलिए कि वे नगर हिन्दू-महासभा के मन्त्री हैं। बाबू मधुबनदास म्युनिस्पल बोर्ड के चेयरमैन हैं, इसलिए उनके नाती के मुण्डन में उसका ब्लाक छापकर उसकी दीर्घायु के लिए शुभकामना प्रकट की थी। पर आपके पत्र में कवियों और लेखकों के सुख-दुःख के बारे में एक प्रश्न छापने के लिए स्थान नहीं है और उन्हीं लेखकों और कवियों के, जिनके बल पर आप लोग पत्र चलाते हैं। यह मत समझिएगा कि केवल रुपये देनेवाले पूँजीपतियों की सहायता से ही पत्र चल सकेंगे उसके लिये 'मैटर' की भी आवश्यकता है ही। समझे महाशय?'

श्रीमान् कविवर वृकोदरानन्द जी 'विरूपाक्ष' साहित्यालंकार ने ये बातें इतनी जोर से टेबुल पर हाथ पटकते हुए कहीं कि मुंशी मनोहरदयाल; सम्पादक 'शुभचिन्तक' एकबार सन्न रह गये।

पर शीघ्रता से मुँह में पड़े हुए समोसे के टुकड़े को चाय की सहायता से निगलने का उद्योग करते हुए उन्होंने कहा—तो बुरा क्या करता हूँ। ये सभी व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र के लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। उनके विषय में लोक-जिज्ञासा बनी रहती है, लोगों

की कौतूहलपूर्ण या उत्सुकतापूर्ण दृष्टि कहिए, उनके कार्यकलाप की ओर लगी रहती है, उनका सुख-दुःख जनता का सुख-दुःख है फिर उनके समाचार क्यों न छापे जायं ?

'और कवि का जीवन उसका घरेलू जीवन ही है ? क्यों ? विरूपाक्षजी ने बात काटकर कहा—कवि तो फालतू आदमी है। केवल पैसे के लिए साहित्य-सेवा करता है। उसे मजदूरी प्राप्त हो गई। फिर उसके बारे में जनता की उत्सुकता क्यों होने लगी !

'नहीं नहीं, मेरा यह आशय नहीं है। कवि का भी महत्व है पर केवल एक क्षेत्र विशेष में ही। वह कविता करके स्वयं आनंद प्राप्त करता है और जन-समुदाय को भी प्रसन्न करता है। जनता उसका व्यक्तिगत जीवन जानने के लिए उतनी उत्सुक न होगी, जितनी उसकी कविताएँ पढ़ने के लिए।'

वाह वाह ! इसी बुद्धि के बल पर आप सम्पादक हुए हैं ? कवि या लेखक ही समाज के सच्चे सेवक, उनके नेता, प्रतिनिधि और निर्माता हैं। इन लीडरों के वे जनक और प्रवर्तक हैं। मैं केवल छायावादी कवियो की बात नहीं कहता। आप उन युगान्तरकारी महाकवियों को क्यों भूलते हैं जिनकी वाणी ने विश्व में परिवर्त्तन उपस्थित कर दिये हैं। हमारे देश में तुलसीदास, नामदेव, बंकिम, मैथिलीशरण आदि ने क्या कुछ कम लोक-सेवा की है। टालस्टाय, डिकेन्स आदि भी इसी प्रकार कुछ न कुछ अपने देश के लिए करते ही हैं। हाँ कमर की छुटाई और कुच की ऊँचाई की ही मीमांसा करनेवालों की बात मैं नहीं करता।

'पर अधिक संख्या तो ऐसे ही कवियों की रही है जो नख-शिख वर्णन ही करने में अपनी कला का दिवाला निकाला करते रहे हैं। तुलसी, नामदेव तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

'ठीक है। सिंहों के लेंहडे नहीं होते। हंस भी बहुत कम होते हैं। भेड़ों की ही संख्या अधिक होती है। और काग भी चारों

ओर मँड़राते पाये जाते हैं। पर इसी कारण सिंह और हंस सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। मानता हूँ कि हिन्दी में भी नायिका-भेद का कुछ दिन बोलबाला था। था क्यों अब भी है रहस्यवाद और प्रगतिवाद की आड़ में। प्राकृतिक उपकरणों, कली, भ्रमर आदि को आलम्बन मानकर काम-शास्त्र की कारिकाएँ ही विवेचित हो रही हैं। इन तथाकथित रहस्यवादियों की कविता रीति-कालीन कविताओं से कम अश्लील, कम गन्दी, कम वीभत्स नहीं ? पर हर युग में दो चार लोक-मंगल का आदर्श स्वप्न देखनेवाले, लोक-संस्कार के इच्छुक सत्कवि भी रहे हैं, प्रोपोगैण्डा से दूर रह कर लोकहित-साधना में निरत रहनेवाले कवि ही असली कवि हैं। केवल कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ने के लिए मार करनेवाले कवि, कवि थोड़े ही हैं।'

'लीजिए आप अपनी ही बात का स्वयं खण्डन कर रहे हैं।' मुंशी मनोहर दयाल ने उछल कर कहा। 'जब प्रोपोगैण्डा से दूर रहनेवाले ही सच्चे कवि हैं तो आप क्यों चाहते हैं कि उनके सुख-दुःख या दिनचर्या का विज्ञापन किया जाय। इससे तो उनका कुछ विशेष लाभ भी न होगा !'

'जो हाँ उनका लाभ न होगा यह मानता हूँ, पर जनता का लाभ होगा। गान्धीजी को आज रात में मजे की नींद आई थी या कल रात में उनकी बेचैनी बढ़ गई थी' इसे अखबार में छापने से गान्धीजी की नींद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। जनता को अवश्य सन्तोष हो सकता है। ठाकुरजी तुमसे कुछ नहीं चाहते, तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि तुम उनकी पूजा-अर्चा बन्द कर दो, नैवेद्य न लगाओ। और पुलिस के सिपाही इनाम के लिए हर महीने तंग करें तो उन्हें इनाम देते रहो ! यह मानव दुर्बलता है कि बिना चाँपे हुए वह कुछ नहीं करना चाहता। अच्छे ग्रहों के लिए कोई दानपुण्य नहीं करता, पर

क्रूर ग्रहों के नाम पर कितना दान दिया जाता है! 'टेढ़ जानि संका सब काहू'। अजी, वे निःस्वार्थ कवि अपनी चर्चा अखबार में कराने के इच्छुक नहीं, पर इससे छोटे-मोटे कवियों का जो अभी इतने निःस्वार्थ नहीं हो पाये हैं, उत्साह बढ़ेगा। यश की अभिलाषा किसे नहीं होती। जब वे समझेंगे कि उनके प्रति जनता की प्रेमदृष्टि है, उनके कार्य-कलाप जनता के काम की चीज हैं, तो वे उत्साहित होंगे। और अपने कामों मे विशेष सावधान भी रहेंगे जिससे उनका भी हित होगा और लोक हित भी।

'अच्छा भाई मैं एक प्रेस रिपोर्टर इस काम के लिए भी नियत कर दूंगा जो स्थानीय और कुछ बाहरी कवियों से भी मिलकर उनके व्यक्तिगत जीवन के समाचार दिया करे और आपके लिए तो मैं स्वयं पर्याप्त हूँ। नित्य मिलता ही हूँ। आपके दैनिक कार्यक्रम तक मैं छाप दिया करूँगा।'

विरूपाक्षजी गद्गद् हो गये, पर प्रसन्नता को छिपाते हुए बोले—मैं यह सब अपने लिए नहीं कह रहा था, तुम मेरे बारे में कुछ छापो या नहीं, मैं इसकी परवा नहीं करता। अभी उस दिन कविवर मृणालजी तांगे से गिरकर अस्पताल पहुँचाये गए पर तुम्हारे पत्र में इसकी कोई चर्चा न थी, इसी का मुझे दुःख था। कांग्रेस कार्य-कर्ताओं की जिनकी खाँसी का समाचार तुमलोग छापते हो, उनसे मृणालजी अच्छे ही हैं, यह मानते हो कि नहीं?

× × × ×

जनता यह देखकर सचमुच प्रसन्न हुई कि शुभचिन्तक में कवियों के कार्य-क्रम तथा उनके बारे में समाचार छपने लगे? नेताओं को तो वह प्रायः हर समय देखा करती थी, पर कवि तो कवि-सम्मेलन के ही दिन उसके सामने घण्टे दो घण्टे के लिए आते थे। वे क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, कैसे उठते बैठते हैं, उनके क्या रंग ढग हैं, इसे जानने का कौतूहल जनता को

ी थी और मुंशी मनोहरदयाल को यह तो मानना ही पड़ेगा कि उनके पत्र की ग्राहक-संख्या कम से कम तिगुनी अवश्य हो गई। मेरे पास उनके अंकों की 'कटिंग' है। मैं उनमें से आप-लोगों के भी कल्याण के लिए कुछ समाचार पढ़ देता हूँ!

शुभ चिन्तक

उत्तर भारत का एकमात्र राष्ट्रीय दैनिक पत्र

वार्षिक मूल्य —————— एक प्रति का

१॥) काशी से प्रकाशित, संख्या ७५२३६)॥।

सं० नं० १, काशी ५ जून

सुना जाता है कि काशी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुत भडभाँड प्रसादजी परसों से उदरविकार से पीड़ित हैं? परसों लाल मनहूस लाल के पोते के मुण्डन-संस्कार के उपलक्ष्य में हुए कवि-सम्मेलन में आप भी गये हुए थे। वहीं भोजन में कुछ व्यतिक्रम हो गया। आपने पूरी मात्रा में भोजन करने के बाद सेर सवासेर लीची खाकर, पाँच सात कुल्फियाँ खाईं और पानी पी लिया। घर आते आते आपको रास्ते में कई दस्त आये। हकीम गुलाबुद्दीन भुलेटनवाले की चिकित्सा हो रही है अवस्था कुछ विशेष चिन्ताजनक नहीं है।

सं० सं० २ काशी ५ जून

कविवर बेहाल जी कल बिना लैम्प की साइकिल चलाने के कारण चालान किये जाकर थाने में पहुँचाये गये थे। पर पुलिस ने डाँटकर छोड़ दिया।

प्रसिद्ध नाटककार 'निरंकुश' जी ने इधर एक उपन्यास लिखने में भी हाथ लगाया है। तीन परिच्छेद लिख भी चुके हैं। पर अब आपने उसे अधूरा ही छोड़ देने का विचार किया है। आपका कहना है कि रबड़ी मलाई न मिलने से मस्तिस्क कुछ

शिथिल हो गया है। जब फिर इन दोनों वस्तुओं का बिकना प्रारम्भ होगा तो ये लिखना शुरू करेंगे।

काशी ६ जून

मृणालजी की अवस्था चिन्ताजनक

फिर कुपथ्य करने से रोग में वृद्धि

कविवर मृणालजी का अतिसार अच्छा हो चला था। १५, १६ की जगह कल उन्हें ३ ही दस्त आये थे। पर उन्होंने हकीम जुलाबउद्दीन से बिना पूछे ही दस बारह लंगड़े आम खा लिए। दस्तों की संख्या बढ़ गई। डाक्टर हत्यारेलाल ने आपको देखकर निराशा प्रकट की है? आज सन्ध्या समय आपके आरोग्य लाभ के लिए नागरी प्रचारिणी सभा में सामूहिक प्रार्थना होगी।

काशी १२ जून

महाकवि विरूपाक्षजी आज सन्ध्या को पार्सल गाड़ी से लखनऊ-कवि-सम्मेलन मे भाग लेने के लिए रवाना होगे। सम्मेलन कल रात में होगा।

विरूपाक्षजी कल सन्ध्या को न जा सके। सामान ही नहीं बँध पाया था। इसलिए आज सवेरे ६ बजे की गाड़ी से गये। गाड़ी खुलने के दस मिनट पूर्व स्टेशन पहुँचे, गार्ड से कहकर बिना टिकट लिए ही बैठ गये। जरा देर होती तो गाडी छूट जाती।

ठाकुर भुलेटन सिंहजी

ठाकुर भुलेटन सिह नौकर पर बिगड़ रहे थे—पाजी कहीं का, हर एक काम को चौपट कर देता है। कहा जायगा मलाई लाने को तो दही उठा लावेगा। उस दिन दो आने का समोसा लाने को कहा तो बतासा उठा लाया। होशहवाश कभी दुरुस्त नहीं। हर एक काम में भूल कर देता है। आज रोशनाई खरीद लाने को कहा तो सलाई खरीद लाया। अभी मुझे कापी जाँचनी

है। अबे, रोशनाई से कापी जाँची जाती है। सलाई से नहीं। सलाई से क्या इन्हें फूकना है।

नौकर बार बार कसम खा रहा था कि बाबूजी आपने सलाई लाने को कहा था, पर इससे बाबू भुलेटनसिंह का क्रोध और भी दुगुना होता जा रहा था। अबकी बार उसे फिर रोशनाई लाने को भेजा और कमरे में जाकर कापियाँ देखने लगे।

अभी दो एक कापी ही देख पाये होंगे कि उनके पुत्र 'आनंद' ने कमरे में प्रवेश किया और अंग्रेजी इतिहास में से कोई प्रश्न पूछा। उसका कल अंग्रेजी में इम्तहान होनेवाला था। और बाबू भुलेटनसिंह को कल तक कापियाँ जमा कर देनी थीं। अस्तु वे खीझ उठे तुम लोग क्या पढ़ते हो। अपना सर। कल परीक्षा है आज हेनरी एट्थ की 'पालिसी' पूछने आये हो। अपनी पालिसी तो देखो। यह क्या कोई पास होने का तरीका है। मैं जब पढ़ता था तो क्या मजाल था कि एक शब्द न याद रहे। हिस्ट्री तो कण्ठस्थ थी ही, ज्यामेट्री के सारे थ्योरम और प्राबलम जबान पर थे। अब इनसे कोई मतलब ही नहीं, लाजिक और अंगरेजी पढ़ाने से काम ठहरा, फिर भी एक बार किताब देख जाऊँ तो सारा का सारा मुँहजबानी कह जाऊँ। एक तुम लोग हो कि रोज रोज रटने पर भी दिमाग में बात बैठती ही नहीं।

लड़का सिर खुजलाता हुआ चला गया। ठाकुर साहब कापी जाँचने में तल्लीन हो गये। अबकी पत्नी की पारी थी। वे कमरे में पधारीं। ठाकुर साहब ने तुरत पूछा—पान लगाकर ले आईं।

'तुमने पान कहाँ माँगा था?' पत्नी ने त्यौरी चढ़ाते हुए कहा। पानी माँगा था सो शीला से भेज दिया।

'वाह मैंने शीला से पान लगाकर भेजने को नहीं कहा था। शीला, ओ शीला। यहाँ आ! तूने अपनी माँ से क्या कहा।'

'कुछ तो नहीं बाबूजी'—लड़की ने डरते हुए उत्तर दिया।

क्यों तुमसे नहीं कहा था कि अपनी अम्मा से कह दे कि पान लगाकर दे जायँ।

'वाह, यह आपने कब कहा था। आपने तो पानी पीकर यही कहा था कि अब जाकर पेन्सिल स्लेट लेकर हिसाब लगा। सो मैं जोड़-बाकी कर रही थी'—कहकर शीला ने मुँह फुला लिया।

'चलो सब सच्चे। एक मैं ही झूठा। और तुमने धोबिन के यहाँ कपड़े दे जाने के लिए कहलवा दिया। याद है न कि कल सवेरे का स्कूल हो जावेगा।'

'अरे मेरे राम। यह आपने मुझसे कब कहा था। आपने तो सुई-डोरा मँगवाया था कि मैं अपने हाथ से ही बटन लगाऊँगा। तुम ऐसा बटन लगाती हो कि वह काज में डालते ही टूट जाता है। सो मैंने आनन्द के हाथ बटन सूई और डोरा भेज दिया। अब यह धोबिन सोबिन का चरखा आप कैसा लगा रहे है!'

'खैर कोट में बटन टाँकने के बाद जब मैंने आनन्द से सुई-डोरा भेजा तो धोबिन को नहीं कहलवाया। आनन्द को बुलाओ।

'हाँ शीला के मामले मे आपकी सचाई कुछ साबित हो चुकी है अब आनन्द के मामले में बाकी है। पर वह है कहाँ। गया है लाला बाबू के लड़के के साथ हिस्ट्री पढ़ने। आवेगा तो पूछ लेना।

कापियाँ जाचने मे ठाकुर साहब फिर तल्लीन हो गये। इतने मे उनके स्कूल का एक छात्र उनसे मिलने आया। वे उसके नमस्कार का उत्तर देते हुए बोले—कहिए, आपका कहाँ से आना हो रहा है? आपका शुभ नाम?

'मास्टर साहब! आपने क्या मुझे नहीं पहचाना? परसाल टेन्थ में आपने मुझे पढ़ाया था। साल भर में आप मुझे भूल गये।'

'ओह तुम्हें चेहरे से तो अब पहचान गया। मैं सोच ही रहा था कि कहीं देखा है। हाँ क्या नाम है?

'बनारसीप्रसाद'—लड़के ने कुछ मुस्कराते हुए कहा।

'ओह बनारसोप्रसाद तुम हो। मुझे पहिले ही क्यों न बतला दिया। अच्छा, कहो कैसे आये? आजकल क्या कर रहे हो?

'कुछ नही मास्टर साहब बेकार हूँ। उधर दो एक ट्यूशन भी थे। वे भी नहीं रहे। आपके पास आया था कि यदि कोई ट्यूशन दिला दे तो बड़ा अच्छा हो। गर्मी की छुट्टियों में ब से लोग ट्यूटर रखते हैं।'

तुमने अच्छा याद दिलाया। अभी परसों या नरसों किसी ने मुझसे एक ट्यूटर माँगा भी था। पर किसने माँगा था, यह याद नहीं। फिर उससे भेंट हुई तो तुम्हारे लिए अवश्य कहूँगा।

बनारसोप्रसाद चला गया। वह भी जानता था कि जब ट्यूटर माँगनेवाला व्यक्ति इनसे दुबारा मिलेगा, तब तक ये मुझ ट्यूशन माँगनेवाले को ही भूल गये रहेंगे। साल भर तक मास्टर साहब से पढ़कर वह उनके स्वभाव से परिचित था।

छात्र के चले जानेपर ठाकुर साहब ने कापियाँ जाँची। दूसरे दिन सवेरे जब स्कूल पहुँचे तो कापियाँ लेते गये, पर रिजल्टशीट घर ही भूल गये। एक साथी ने मजाक किया यार बिना बटन का ही कोट पहनकर चल दिये! इतनी क्या जल्दी थी! तब उन्हें स्मरण हुआ कि जिस कोट में बटन लगाया था, और जिसकी जेब में रिजल्ट शीट रखा था, उसे न पहिनकर वे पहनकर चले आये हैं जिसे बटन तोड़कर धोबी को देने के लिए रख दिया था! उन्हें यह भी याद आया कि वे शीघ्रता में बिना जलपान किये ही मेज पर, तश्तरी छोड़कर चले आये हैं। अभी कल ही शीला की माँ से उनसे इस सम्बन्ध में झगड़ा हो चुका है कि तुम जलपान करते नहीं, मुझे नाहक परेशान होना पड़ता है। ठाकुर साहब कल उसे झूठी बता चुके हैं, पर आज क्या उत्तर देंगे, यही उनकी समझ नहीं आ रहा था।